भारत सरकार
भारत का विधि आयोग

रिपोर्ट सं. 268

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का संशोधन - जमानत संबंधी उपबंध

मई, 2017

डा.न्यायमूर्ति बलबीर चौहान
भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय
अध्यक्ष
भारत का विधि आयोग
भारत सरकार
हिन्दुस्तान टाइम्स हाउस
कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली - 110001
दूरभाा : 230132708 फैक्स : 23355741

Dr. Justice B. S. Chauhan
Former Chief Justice of Delhi High Court
Chairman
Law Commission of India
Government of India
Hindustan Times House
K.G. Marg, New Delhi-110 001
Telephone : 230132708, Fax : 23355741

अ.शा. सं. 6(3)289/2015-एल.सी.(एल.एस.)[·] तारीख : 23 मई, 2017

प्रिय श्री रवि शंकर प्रसाद जी,

व-र्ा 2015 में विधि विभाग द्वारा भारत के विधि आयोग से भारत में जमानत अधिनियम की आवश्यकता की परीक्षा करने को कहा गया । तथापि, 18.10.2016 को न्याय परिदान और विधिक सुधार की सलाहकार समिति की 10वीं बैठक के दौरान यह विनिश्चित किया गया कि अकेले जमानत अधिनियम की कोई आवश्यकता नहीं है और सुधार को ध्यान में रखकर सुसंगत कानूनों में संशोधनों का सुझाव दिया जा सकता है ।

आयोग ने काफी पहले मार्च, 2016 में वि-नय पर अपना अध्ययन आरंभ किया । आयोग को 2 नवंबर, 2016 को हुए परामर्श के दौरान विभिन्न राज्यों के पुलिस अधिकारियों से परस्पर संपर्क करने का अवसर प्राप्त हुआ । आयोग ने 21 जनवरी, 2017 को सभी वर्ग के न्यायिक अधिकारियों से परस्पर संपर्क किया । अध्ययन के दौरान, सभी राज्यों के अभियोजन महानिदेशकों से भी परामर्श किया गया । आयोग द्वारा इन परामर्शों से उद्भूत विचारों और सुझावों पर विचार किया गया और विस्तार से संपूर्ण मुद्दे पर विचार-विमर्श किया गया ।

मुझे भारत में जमानत सुधार से संबंधी आयोग के सुझावों वाली ''दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का संशोधन - जमानत संबंधी उपबंध'' शी-र्षक की रिपोर्ट सं. 268 को अग्रे-नित करते हुए बहुत ह-र्ा हो रहा है ।

आयोग रिपोर्ट तैयार करने में सुश्री अदिति सावंत, परामर्शी के उत्तम प्रयासों की प्रशंसा अभिलिखित करना चाहता हूं ।

सादर,

भवदीय
ह0/-
(डा. न्यायमूर्ति बी. एस. चौहान)

श्री रविशंकर प्रसाद,
माननीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली - 110 001

· निवास : 7-ए, मोती लाल नेहरू मार्ग, नई दिल्ली

अभिस्वीकृति

''दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का संशोधन - जमानत संबंधी उपबंध'' शी-र्क वाली जमानत सुधारों पर भारत के विधि आयोग की रिपोर्ट सं. 268 आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों के अलावा कुछ प्रति-ठित न्यायाधीशों, वरि-ठ अधिवक्ताओं, आयोग के अनुसंधानकर्ताओं और परामर्शदाताओं के समक्ष मार्गदर्शन से ही संभव हुआ है । आयोग रिपोर्ट तैयार करने में सहायता करने वाले निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा दिए गए योगदान के कृतज्ञता ज्ञापित करता है ।

1. माननीय न्यायमूर्ति ए. पी. साही, वरि-ठ न्यायाधीश, इलाहाबाद उच्च न्यायालय
2. माननीय न्यायमूर्ति प्रत्यु-न कुमार, न्यायाधीश, इलाहाबाद उच्च न्यायालय
3. माननीय न्यायमूर्ति सुश्री मुक्ता गुप्ता, न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय
4. माननीय न्यायमूर्ति आर. बसंत, पूर्व न्यायाधीश केरल उच्च न्यायालय
5. श्री सिद्धार्थ लूथरा, वरि-ठ अधिवक्ता, भारत का उच्चतम न्यायालय
6. श्री अभय, अपर महानिदेशक, सी. आर. पी. एफ.
7. सुश्री कुमुद पाल, प्रधान सचिव (न्यायिक), उत्तर प्रदेश सरकार
8. डा. अपर्णा चंद्रा, प्रोफेसर, नेशनल लॉ विश्वविद्यालय
9. डा. मृनाल सतीश, प्रोफेसर, नेशनल लॉ विश्वविद्यालय
10. सुश्री शिखा धनधरिया, पूर्व परामर्शदाता, भारत का विधि आयोग
11. सुश्री अदिति सावंत, परामर्शदाता, भारत का विधि आयोग

आयोग भारत में जमानत सुधारों पर चर्चा करने के लिए अपनी ओर से विचार-विमर्श की व्यवस्था करने के लिए पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो तथा भारतीय विधि संस्थान की भी प्रशंसा करता हूं । इन चर्चाओं में भाग लेने वालों अर्थात् उच्चतम न्यायालय और दिल्ली उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों, संपूर्ण देश के विभिन्न जिलों के विद्वान् न्यायिक अधिकारियों तथा विभिन्न राज्यों के पुलिस अधिकारियों को उनके महत्वपूर्ण विचारों के लिए अपना आभार व्यक्त करता हूं । विभिन्न राज्यों के ऐसे पुलिस महानिदेशकों और अभियोजन महानिदेशकों को भी धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपने मूल्यवान सुझावों से आयोग को अवगत कराया ।

* * *

रिपोर्ट सं. 268

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का संशोधन - जमानत संबंधी उपबंध

वि-नय-सूची

अध्याय		शी-र्क	पृ-ठ
I.		**प्रस्तावना**	6
	क.	पुनर्विलोकन का संदर्भ और व्याप्ति	7
	ख.	सांख्यिकीय आंकड़े और विश्ले-ण	8
II.		**जमानत पर अंतरर-ट्रीय मानक और इसकी संवैधानिक अभिव्यक्तियां**	12
	क.	निर्दो-िता की उपधारणा	13
	ख.	गैर-विभेदीकरण का अधिकार	14
	ग.	मनमाने निरोध से स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार	17
	घ.	शीघ्र और ऋजु विचारण का अधिकार	19
III.		**जमानत की परिभा-ा**	21
IV.		**भारत में विधिक उपबंध और जमानत तंत्र**	23
	क.	गिरफ्तारी	23
	ख.	रिमांड (प्रतिप्रे-ण)	26
V.		**जमानतीय और अजमानतीय अपराध**	30
	क.	जमानतीय अपराध	30
	ख.	व्यतिक्रम जमानत या कानूनी जमानत	32
	ग.	अजमानतीय अपराध	33
VI.		**अग्रिम जमानत**	39
VII.		**जमानत का रद्दकरण**	45
VIII.		**विशे-न विधियों में जमानत**	47
	क.	जमानत और स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी परार्थ अधिनियम, 1985	47
	ख.	आतंकवाद और जमानत	50
	ग.	संगठित अपराध और जमानत	53
	घ.	आर्थिक अपराधों में जमानत	54
IX.		**अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत**	57

X.		**धनीय जमानत - निर्धन और विचाराधीन व्यक्ति**	63
XI.		**सिफारिशें**	69
	क.	गिरफ्तारी	70
	ख.	व्यतिक्रम या कानूनी जमानत और प्रतिप्रे-ण	70
	ग.	ऐसी शर्तें जो जमानत पर अधिरोपित की जा सकती हैं	72
	घ.	अनुसूची 1 के वर्गीकरण में उपांतरण	74
	ङ	अग्रिम जमानत	75
	च.	आर्थिक अपराधों में जमानत	76
	छ.	विशे-ा विधियां	76
	ज.	दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 और 436क के उपांतरण की आवश्यकता	77
	झ.	केंद्रीय आसूचना डाटाबेस और इलेक्ट्रानिक टैगिंग की आवश्यकता	78
	ञ.	लोक अभियोजक और पीड़ित	80
	ट.	जोखिम निर्धारण	80
	ठ.	अपवाद	82
	ड.	कारागार अवसंरचना	82
XII.		**नि-क-र्ा**	83
उपाबंध क.		**दंड विधि संशोधन विधेयक, 2017**	85-93
उपाबंध ख.		**दिल्ली उच्च न्यायालय के सुसंगत नियम**	94-99
उपाबंध ग.		**जमानत परियोजना पर विचार-विमर्श**	100-104

अध्याय 1
प्रस्तावना

1.1 इस समय, भारत में जमानत काफी चर्चित मुद्दा है । ऐसी कई रिपोर्टें हैं जो भारत में आपराधिक न्याय प्रणाली की स्थिति पर प्रकाश डालती है । निम्नलिखित वाक्यांश वस्तुस्थिति को पूर्णतः स्प-ट करते हैं :

> ''..... यदि सभी निरुद्ध व्यक्तियों के 50 प्रतिशत और कुछ देशों में 70 प्रतिशत से अधिक विचार-पूर्व निरुद्ध हों, तो कुछ दो-नपूर्ण है । सामान्यतः इसका यह अर्थ है कि आपराधिक कार्यवाहियों में बहुत समय लगता है । अर्थात् आपराधिक संदिग्ध व्यक्तियों का निरोध अपवाद के बजाए एक नियम बन गया है और जमानत पर छोड़े जाने का न्यायाधीशों, अभियोजकों और कारागार कर्मचारियों द्वारा भ्र-टाचार के प्रोत्साहन के रूप में गलत अर्थ लगाया जाता है ....।[1]

> दो-ाकर्ता, अनपकारी पर तभी तक अंकुश की दहशत बनी रहती है जब तक वह अच्छा बर्ताव करता है किंतु यह किसी क्षण टूट सकता है यदि वह अच्छे बर्ताव के अपने वादे को तोड़ता है, जैसे ही वह ऐसा करता है उसकी जमानत समाप्त की जा सकती है ।[2]

1.2 ऐतिहासिकतः, जमानत विचारण पर अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति सुनिश्चित करने या साक्ष्य या साक्षी के छेड़छाड़ करने से ऐसे व्यक्ति को निवारित कर प्रक्रिया की सत्यता सुनिश्चित करने का एक उपकरण था । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसमें इसके पश्चात् 'दंड प्रक्रिया संहिता') के अधीन, पुलिस, अभियोजक, मजिस्ट्रेट और न्यायाधीश को समाज के हितों को जोखिम में डाले बिना अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए विधि की सीमाओं के भीतर सर्वोत्तम निर्णय और स्वविवेक के प्रयोग को व्यादि-ट किया गया है ।

1.3 आम भा-ा में, जमानत अभिरक्षा से छोड़ जाने को निर्दि-ट करता है चाहे यह व्यक्तिगत बंधपत्र पर हो या प्रतिभूति के साथ । **मोती राम** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[3] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने स्प-ट किया कि जमानत पद की परिभा-ा में व्यक्तिगत बंधपत्र और प्रतिभूति दोनों के साथ छोड़ा जाना सम्मिलित है । यह उल्लेखनीय है कि इस विस्तारित

---

[1] विचारण पूर्व उन्मुक्ति और निर्दो-ा समझे जाने का अधिकार ; अंतरा-ट्रीय विधि पर विचारण पूर्व उन्मुक्ति की पुस्तिका, लायरस राइट वाच कनाडा (एल.आर.डब्ल्यू.सा) मार्च, 2013, अपराध निवारण और आपराधिक न्याय पर 12वीं संयुक्त रा-ट्र कांग्रेस, ''आपराधिक न्याय प्रणाली में कैदियों के उपचार पर संयुक्त रा-ट्र का सर्वेक्षण और अन्य सर्वोत्तम पद्धतियों की कार्यशाला '' की कार्यवाही, सेलवाडोर, ब्राजील, 12-19 अप्रैल, 2010, पृ-ठ पर देखें ।

[2] फ्लेचर मूर. मजिस्ट्रेट 'लॉ एंड सजेस्टेड इनक्रीज आफ जुडिकेसन एंड पावर, 9 जे. आफ द स्टेट एंड एस.ओ.सी. इनक्वाइरी एस.ओ.सी वाई ऑफ आई.आर. 671, 63(83 ।

[3] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1594.

परिभा-ा के अधीन भी 'जमानत' केवल धनीय आश्वासन या तो अपने निजी आश्वासन (जिसे व्यक्तिगत बंधपत्र या मुचलका भी कहा जाता है) या तृतीय पक्षकार की प्रतिभूति के आधार पर छोड़ा जाना निर्दि-ट करता है ।

1.4 व्यक्तिगत स्वतंत्रता और विधिसम्मत नियम को संविधान के अनुच्छेद 22 में अपना सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है जिसमें मनमाने और अनिश्चित निरोध के विरुद्ध उपाय सम्मिलित है । इसमें आगे यह उपबंध है कि किसी व्यक्ति को संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा विहित अधिकतम अवधि से परे तक निरुद्ध नहीं किया जाएगा । जमानत की मंजूरी से संबंधित मामलों से निपटने के लिए न्यायपालिका द्वारा अपनाई गई स्प-ट प्रक्रिया के बावजूद भी, व्यवस्था प्राचीन प्रणाली के पैरामीटर को पूरा करने में कुछ हद तक असमर्थ है जो यह धारणा पैदा करती है कि जमानत प्रणाली अननुमेय है ।

1.5 दंड प्रक्रिया संहिता[4] पर अपनी 41वीं रिपोर्ट में विधि आयोग की सिफारिशों के आधार पर जमानत से संबंधित विधि का संवैधानिक उद्देश्यों के अनुसार उपयुक्त रूप से उपांतरण किया गया और 'व्यक्ति की स्वतंत्रता' और 'सामाजिक व्यवस्था' के हित के बीच उचित संतुलन बनाया गया । दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 33 के उपबंध अर्थात् धारा 436, 437 और 439 को व-र्ा 1973 में सरल और कारगर बनाया गया । पिछले कुछ दशकों में, सामाजिक संदर्भ, इसके संबंध, अपराध के परिवर्तित तरीके और जमानत मंजूर करते समय न्यायिक स्वविवेक का प्रयोग करने में मनमानापन, जमानत के मुद्दे की परीक्षा करने और भावी सुधार के लिए रूपरेखा तैयार करने के बाध्यकर कारण हैं ।

1.6 सारतः, जमानत अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की स्वतंत्रता और आम समाज के हितों के बीच अच्छा संतुलन है । इस प्रकार, यह कार्य न केवल अपराध के बढ़ते दर से निपटने के लिए अधिकतम कठोर जमानत विधान को सम्मिलित करेगा बल्कि वहीं इसे साम्यापूर्ण बनाएगा । यह वर्तमान सामाजिक-विधिक समस्याओं के अनुसार जमानत विधानों को सामंजस्यपूर्ण बनाएगा और यह सुनिश्चित करेगा कि विचाराधीन और निर्धन व्यक्तियों की न्याय तक पहुंच हो ।

क. पुनर्विलोकन का संदर्भ और व्याप्ति

1.7 विधि कार्य विभाग, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार ने अपने पत्र तारीख 11.09.2015 द्वारा भारत में जमानत अधिनियम की आवश्यकता पर तारीख 1.9.2015 का विधि और न्याय मंत्रालय का टिप्पण अग्रेनित किया । विभाग ने ''यूनाइटेड किंगडम और अन्य देशों में समरूप उपबंधों को ध्यान में रखते हुए पृथक् जमानत अधिनियम होने की वांछनीयता की परीक्षा करने हेतु'' विधि आयोग को एक निर्देश भेजा । तथापि, बाद में विधि आयोग को पत्र तारीख 21.12.2016 द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता के विद्यमान उपबंधों में आवश्यक परिवर्तन लाकर उद्देश्य

[4] 41वीं विधि आयोग की रिपोर्ट, 1969, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898, वॉल्यु. 1.

को प्राप्त करने के लिए निर्दि-ट किया गया ।

1.8 जबकि भारत में जमानत विधियों को विधियों में विकास के द्वारा कई तरह से परिशोधित किया गया फिर भी काफी विकास की प्राप्ति करना अभी शे-ा है । विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार के अनुरोध पर, भारत के इस विधि आयोग ने जमानत पर लागू विधि और प्रक्रिया का पुनर्विलोकन करने का कार्य अपने हाथ में लिया । इस तथ्य को मानते हुए कि आपराधिक न्याय प्रणाली का सुधार करना समय खपाऊ होगा, विधि आयोग पूर्विकता आधार पर जमानत से संबंधित मुद्दों पर विचार करना उचित समझता है। इस विशि-ट पुनर्विलोकन को पूर्विकता प्रदान करने का कारण यह तथ्य को मान्यता प्रदान करना था कि इसमें काफी लोकहित अंतवर्लित है । सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि इसका प्रभाव विधि न्यायशास्त्र और भारतीय संविधान के अधिकारों की अवधारणा पर है । उपरोक्त अधिदेश के अनुसरण में, आयोग ने इस मुद्दे पर व्यापक मत प्राप्त करने के लिए पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो (बी.पी.आर.डी.), न्यायपालिका, भारतीय विधि संस्थान, शिक्षाविदों, अधिवक्ताओं और लोक अभियोजकों जैसे विभिनन पणधारियों से परामर्श किया ।[5]

ख. सांख्यिकीय आंकड़ा और विश्ले-ाण

1.9 भारत में कारागार जनसंख्या के संबंधित एकत्रित आंकड़ों से धुंधला परिदृश्य दिखाई पड़ता है । यह उपदर्शित करता है कि कारागार जनसंख्या का 67 प्रतिशत भारत में विचारण की प्रतीक्षा कर रही है । जमानत प्रणाली में असंगतता पूरे देश के कारावासों में अधिक भीड़ का और कारागार प्रशासन और 'राज्य' को एक अन्य चुनौतियों का सेट सम्मुख प्रस्तुत करने का एक कारण हो सकता है । संविधान के भाग 3 के अधीन यथा गारंटीकृत स्वतंत्रताओं का भारत के संविधान की उद्देशिका में अनु-ठापित विचारों और उद्देश्यों अर्थात् न्याय-आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक से उद्भुत संबंध है । यह गणतंत्र का एक पवित्र कर्तव्य है और इसके पूरे अर्थ में इसका प्रक्कटन पवित्रतम लक्ष्यों में से एक है । यह भारत सहित अधिकांश अधिकारिताओं में रहस्योद्घाटन के बजाए एक मानक बन गया है कि सशक्त, धनी और प्रभावशाली तत्परतापूर्वक और आसानी से जमानत प्राप्त कर लेते हैं जबकि समूह/सामान्य/गरीब लोग कारबार में पड़े रहते हैं ।[6] इस प्रकार, यह एक विभीनिका है जो आम नागरिकों और कुटुम्ब के लोगों को प्रभावित कर रही है जो न केवल 'न्याय' के आधारभूत तत्व से वंचित करता है बल्कि मानव गरिमा की दांव पर हैं । विचाराधी कैदियों की अधिकांश संख्या (70.6 प्रतिशत) निरक्षर या अर्द्ध-साक्षर है ।[7] कैदियों की आर्थिक प्रास्थिति से संबंधित आंकड़ों के अभाव में, 'साक्षरता' यह

---

[5] अधिक जानकारी के लिए अनुलग्नक-ग देखें ।

[6] जेसन गिल्बर्ट '' भीड़भाड़युक्त ओटवा कारागार के लिए हमारी जमानत प्रणाली पर कलंक'' द ओटवा सन (14 जनवरी 2016) : http://www.ottawasun.com/2016/01/14/blame-our-bailsystem-for-overcrowded-ottawa-jail (पिछली बार 25 जनवरी, 2017 को देखा गया) यहां पर उपलब्ध है.

[7] रा-ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, कारागार सांख्यिकी (गृह मंत्रालय, 21वीं संस्करण, 2015).

मूल्यांकन करने के लिए उपयोगी प्रोक्सी का प्रयोजन पूरा करता है कि विचाराधीन कैदियों की अधिकांश संख्या सामाजिक-आर्थिक सीमांत समूह की है ।

1.10 गृह मंत्रालय की विभिन्न रिपोर्टें यह दर्शित करती हैं कि विभिन्न राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के कुल 2,31,340 विचाराधीन कैदी भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध करने के लिए कारागारों में रखे गए हैं और 50,457 कैदी विशे-न विधि अर्थात् सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962, स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 और उत्पाद-शुल्क अधिनियम, 1944 आदि[8] के अधीन विचाराधीन है । विचाराधीनों की 12,92,357 की काफी संख्या को 2015 के दौरान छोड़ा गया जिसमें से 11,57,581 लोगों को जमाकनत पर छोड़ा गया ।[9]

1.11 नि-पक्ष न्याय का अधिकार न केवल अपराध के अभियुक्त व्यक्ति बल्कि राज्य द्वारा प्रतिनिधिक आम जनता और संपूर्ण समाज के विचार के भी संतुलन की अपेक्षा करती है । इसे अभियुक्त व्यक्ति और अपराध द्वारा प्रभावित उन व्यक्तियों के धनि-ठ लोगों सहित आपराधिक न्याय प्रणाली में आम विश्वास भी पैदा करना चाहिए ।[10] संपूर्ण विश्व में कारावास की अवधि काफी भिन्न-भिन्न है ; उदाहरणार्थ, यू. एस. में कारावास की अवधि प्रति 100,000 रा-ट्रीय जनसंख्या का 707 है जबकि भारत में यह प्रति 100,000 की रा-ट्रीय जनसंख्या का 33 है ।[11] इस प्रकार, विभिन्न कारकों और गणना के समायोजन के प्रश्चात् भी, यह अनुमान किया जा सकता है कि भारत न्यूनतम कारावास दरों में एक है ।

	कुल जनसंख्या*	कारावास जनसंख्या*	कारावास में % जनसंख्या*	% विश्व कारावास जनसंख्या*	% विश्व जनसंख्या*
यूनाटेट स्टेट	296	2.19	0.74	23.68	4.36
यूनाइटेड किंगडम	54	0.08	0.15	0.86	0.8
चीन	1554	1.55	0.1	16.76	22.89
रूस	142	0.87	0.61	9.41	2.09
भारत	1092	0.33	0.03	3.57	16.08
ब्राजील	361	0.19	0.05	2.05	5.32

* जनसंख्या मिलियन में

[8] -वही-

[9] पूर्वोक्त टिप्पण 7.

[10] दक्षिण अफ्रीकी सुप्रीम कोर्ट, जैनर बनाम लोक अभियोजन निदेशक (2006) 2 ए.आई.आई.एस.ए. 588.

[11] आपराधिक नीति अनुसंधान संस्थान, ''वर्ल्ड प्रिजन ब्रीफ'': http://www.prisonstudies.org/country/india (अंतिम 23 दिसंबर, 2016 को देखा गया) यहां उपलब्ध है ।

सारणी 1 : कारावास जनसंख्या की तुलना

स्रोत : आपराधिक नीति संस्थान, विश्व कारावास ब्रीफ

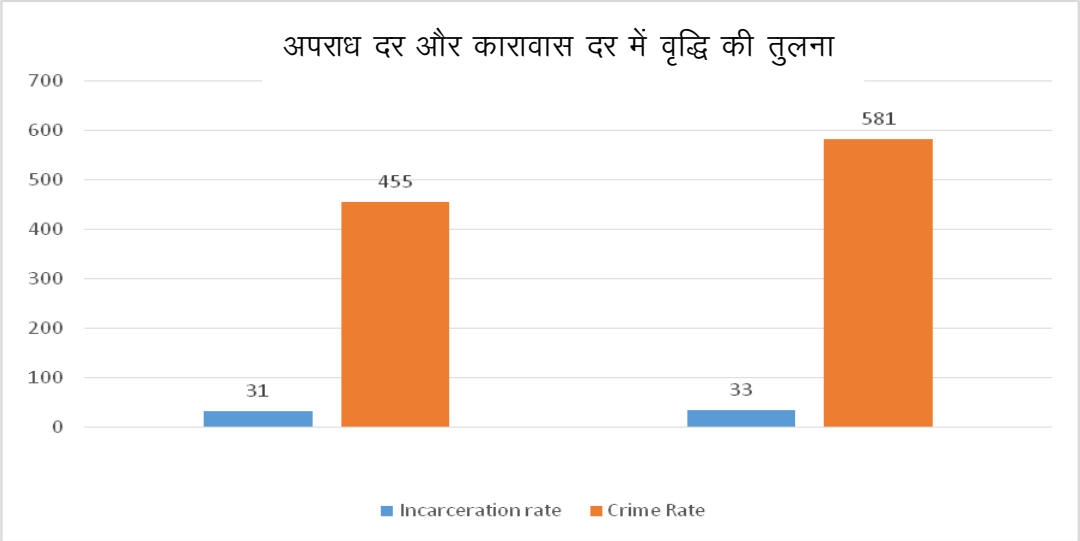

आंकड़ा 1 : अपराध दर और विचाराधीन दर में वृद्धि की तुलना

स्रोत : रा-ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो और किंग्स कालेज स्थित कारावास अध्ययन का अंतररा-ट्रीय केंद्र

1.12 दिए गए दशकों में अपराध दर की वृद्धि के बावजूद, कारावास की दर अपरिवर्तित बनी हुई है । (उपरोक्त आंकड़ा - 1 देखें) । गुणात्मक तुलनात्मक सूचियों में, भारत अपने कम कारावास दरों के अभिप्राय में विश्व के कई देशों की तुलना में काफी अधिक है । नि-कर्-ा के कई कारण हो सकते हैं । निम्न कारावास दरों के बावजूद नीचे सारणी 2 से यह प्रतिबिंबित होता है कि मंजूर की जाने वाली जमानत की प्रतिशतता आदर्श से काफी कम है, यह प्रदर्शित करता है कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के मात्र 28 प्रतिशत को ही जमानत मंजूर की गई है ।

	विशे-न विधियां	भारतीय दंड संहिता
गिरफ्तार व्यक्तियों की कुल संख्या	4,8,57,230	3,6,36,596
आरोपित व्यक्तियों की कुल संख्या	4,7,27,419	3,2,99,161
अभिरक्षा में व्यक्तियों की कुल संख्या	74,139	2,94,857
जमानत मंजूर व्यक्तियों की कुल संख्या	3,20,392	1,0,18,760

सारणी 2 : मामलों के निपटान की सारणी

स्रोत : रा-ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो

1.13 निश्चित रूप से समुचित प्राधिकारी द्वारा 'जमानत का अधिकार - इसकी मंजूरी या इनकार' के सामाजिक5आर्थिक प्रीव को सुव्यवस्थित करने का एक उलझाउ प्रश्न बना हुआ है । तथापि, कतिपय असंक्राम्य मार्गदर्शक सिद्धांत और कतिपय प्रक्रियाओं को कारगर और सरल बनाना विधिक प्रक्रिया को और अधिक मानवीय और मूलभूत स्वतंत्रता, न्याय और सुशासन के विचार के अधीन बनाएगा । रा-ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (इसमें इसके पश्चात् एन.सी.आर.बी.) द्वारा उपबंधित जनसांख्यिकीय जानकारी भारत में जमानत प्रणाली के प्रचालनों को प्रश्नगत करने के महत्व को मान्यता प्रदान करती है ।

अध्याय 2
जमानत पर अंतरा-ट्रीय मानक और इसकी संवैधानिक अभिव्यक्तियां

2.1 जमानत की अवधारणा को मानवीय मूल्यों को कायम रखते हुए विभिन्न अंतरा-ट्रीय प्रसंविदाओं और लिखतों में मान्यता प्रदान की गई है । अंतरा-ट्रीय विसिल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा, 1966[12] (इसे इसमें इसके पश्चात् आई.सी.सी.पी. आर.) के अनुच्छेद 9(3) में यह उल्लेख है कि विचारण की प्रतीक्षा कर रहे व्यक्तियों की अभिरक्षा में निरोध सामान्य नियम नहीं होगा और विचारण पर उपस्थित होने की प्रत्याभूति छोड़े जाने की शर्त हो सकेगी । इसी प्रकार, आई.सी.सी.पी.आर. का अनुच्छेद 10(2)(क) भी उसी सिद्धांत को निर्दि-ट करता है जैसाकि इसमें कथन है कि अभियुक्त के साथ दो-नसिद्धि[13] जैसा वही बर्ताव नहीं किया जाना चाहिए । कुल मिलाकर, अनुच्छेद 14(2) मूलतः विधि के स्वयंसिद्ध सिद्धांत के अनुसार दो-नी सिद्ध होने तक निर्दो-िता की उपधारणा का उपबंध करता है । यह सिद्धांत आरोप साबित करने का भार अभियोजन पर अधिरोपित करता है और यह सुनिश्चित करता है कि अभियुक्त को संदेह के फायदे का अधिकारहै और लोक प्राधिकारियों को विचारण की समाप्ति तक पूर्व निर्णय करने से निवारित करने को आबद्धकर बनाता है । यह सबूत का भार अभियोजन पर डालता है और पक्षपातरहित विचारण की अभिधारणा करता है ।[14]

2.2 मनमाने निरोध पर यू. एन कार्यकारी समूह ने अपनी रिपोर्ट[15] में यह मत व्यक्त किया कि निर्धन और सामाजिक रूप से संवेदनशील समूह वाले व्यक्तियों पर अननुपातिक रूप से प्रभाव पड़ता है, जहां जमानत स्वविवेकीय है ।[16]

2.3 वि-नय पर शोध से यह उपदर्शित होता है कि ऐसे प्रतिवादी जिन्हें जमानत मंजूर हो गई है, को ऐसे उन लोगों से जिन्हें विचारण के लंबित रहने तक निरुद्ध किया गया है, से दो-नमुक्ति अभिप्रापत करने का बेहतर/अधिक अवसर रहता है । इसके अतिरिक्त, एन.आर.सी.बी. से विश्लेि-त आंकड़ों से यह प्रतिबिम्बित होता है कि भारत में जमानत की मंजूरी या इनकारी के विद्यमान मानकों का आर्थिक सुदृढ़ता और साक्षरता स्तर से घनि-ठ संबंध है ।[17] तथापि, निर्दो-िता की उपधारणा ; गैर-विभेद का अधिकार ; मनमाने निरोध से स्वतंत्रता का अधिकार और शीघ्र और नि-पक्ष विचारण का अधिकार जैसे सिद्धांत राज्य और विभिनन प्राधिकारियों के लिए निर्दे-नचिह्न का कार्य करते हैं ।

---

[12] 999 यू.एन.टी.एस. 171.

[13] . आई.सी.सी.पी.आर. का अनुच्छेद 10(2)(क) इस प्रकार है ; ''आपवादिक परिस्थितियों के सिवाए अभियुक्त व्यक्तियों को दो-नसिद्ध व्यक्तियों से अलग रखा जाएगा और अदो-नसिद्ध व्यक्ति के रूप में उनकी हैसियत के अनुकूल पृथक व्यवहार किया जाएगा ।''

[14] मानवाधिकार समिति, सी.सी.पी.आर. सामान्य टिप्पणी सं. 32 पैरा 30 पर.

[15] मानवाधिकार आयोग, एकपक्षीय निरोध पर कार्य समूह की रिपोर्ट, 12 दिसंबर, 2015 (ई/सीएन.4/2006/) http://ap.ohchr.org/documents/alldocs.aspx?doc_id=11600 (अंतिम बार 24 दिसंबर, 2016 को देखा गया) यहां उपलब्ध है ।

[16] -वही- पैरा 66 पर.

[17] पूर्वोक्त टिप्पण 7.

क. निर्दोनिता की उपधारणा

2.4 निर्दोनिता की उपधारणा और अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का दो-न साबित करने का अभियोजन का कर्तव्य आपराधिक विधि शास्त्र का ममीरा है ।[18] अपराध से आरोपित प्रत्येक व्यक्ति के पास दो-ी साबित होने तक निर्दो-न उपधारित किए जाने का अधिकार है ।[19]

2.5 यह मार्गदर्शक सिद्धांत कि जमानत सामान्य नियम हो और कारागार एक अपवाद, ''विचारण-पूर्व प्रक्रम पर निर्दोनिता की उपधारणा के सिद्धांत का तार्किक और सतत् अनुकूलन है ।''[20] सिद्धांत सार्वभौमिक मानव अधिकार की घो-णा के अनुच्छेद 11(1), 1948 (यू.डी.एच.आर.), यूरोपियन यूनियन (इसमें इसके पश्चात् ई.यू. चार्टर) के मूल अधिकारों के चार्टर के अनुच्छेद 48(1) और नेल्सन मंडेला नियम के रूप में ज्ञात कैदियों के बर्ताव के यूनाइटेड नेशन्स मानक न्यूनतम नियम के वि-नय 111 में प्रति-ठापित है ।[21]

2.6 यूनाइटैड स्टेट्स उच्चतम न्यायालय ने निर्दोनिता की उपधारणा के निर्बंधित और उदारवादी निर्वचन दोनों को अंगीकार किया है । **स्टैक** बनाम **बायल**[22] वाले मामले में, न्यायालय ने निश्चायक रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि जब तक विचारण के पूव जमानत के इस अधिकार को संरक्षित नहीं किया जाता है तब तक शतकों के संघर्-ा के पश्चात् अर्जित निर्दोनिता की उपधारणा अपनी सार्थकता खो देगी । तथापि, **बेल** बनाम **वोल्फिश**[23] वाले मामले में विलोमतः यह उल्लेख किया कि जमानत के प्रक्रम पर दो-ी साबित होने तक निर्दो-न होने की उपधारणा का अधिकार प्रवर्तनशील नहीं है । इसी प्रकार, **यूनाइटेड स्टेट्स** बनाम **सैलेरनो**[24] वाले मामले में यू.एस. उच्चतम न्यायालय ने विचारण लंबित रहने तक निरोध की आपवादिक प्रकृति को केवल इस तरह स्प-ट किया जब यह पाया जाए कि व्यक्ति और समुदाय की सुरक्षा को सुस्प-ट खतरा है । **सैलेरेनो** (पूर्वोक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति मार्शल ने कहा कि अभियुक्त के पक्ष में निर्दोनिता की उपधारणा असंदिग्ध विधि है .... और इसका प्रवर्तन हमारी आपराधिक विधि के प्रशासन के आधार पर अवस्थित है ।'' उन्होंने यह नि-कर्-ा निकाला कि जमानत सुधार अधिनियम के ऐसा उपबंध निर्दोनिता की उपधारणा को निस्तेज करेगा और असंवैधानिक है ।

---

[18] वूलिंगटन बनाम, डी.पी. (1935) यू.के.एच.एल. 1 ; गोल्बार हुसैन और अन्य बनाम असम राज्य और अनय (2015) 11 एस. सी. सी. 242 और विनोद कुमार बनाम हरियाणा राज्य (2015) 3 एस.सी. सी. 138. देखें ।

[19] शमीरनोवा बनाम रुस, आवेदन सं. 46133/99 और 48183/99 (2003).

[20] क्राइस्टोफ जे. एम. सैफरलिंग, अंतरा-ट्रीय दंड प्रक्रिया 46 (ऑक्सफोड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 2001) की ओर ।

[21] . इन नियमों को हालही में 2015 में संशोधित किया गया, दो-ी साबित न होने तक निर्दो-न उपधारित किए जाने का अधिकार सर्वप्रथम नियम 84 में पाया गया किंतु नए नियमों में यह नियम 111 में पाया जाता है । इन नियमों को नेल्शन मंडलेला नियम भी कहा जाता है ।

[22] 342 यू. एस. 1, 4(1951)

[23] 441 यू. एस. 520, 533 (1979), न्यायालय ने यह राय दी कि ''....निर्दोनिता की उपधारणा ऐसा सिद्धांत है जो आपराधिक विचारण में सबूत के भाग का आवंटन करता है .... किंतु यह उसका विचारण आरंभ होने के पूर्व परिरोध के दौरान पूर्व विचारित निरुद्ध व्यक्ति के अधिकारों के अवधारण को लागू नहीं होता ....'' ; निकोस्टेटलर, संवैधानिक आपराधिक प्रक्रिया ; दक्षिण अफ्रीका गणराज्य के संविधान पर कमेंट्री, 134 (बटरवर्थ, डरबन, 1998) (यह दलील देते हुए कि जमानत का अधिकार निर्दोनिता की उपधारणा से उद्भूत नहीं होता) भी देखें ।

[24] यूनाइटेड स्टेट्स बनाम सालेर्नो, 481 यू. एस. 739 (1987)

2.7 **आर.** बनाम **हाल**[25]वाले मामले में कनाडा के उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित की कि जमानत की इनकारी का निर्दोनिता की और अभियुक्त के स्वतंत्र अधिकारों की उपधारणा पर हानिकर प्रभाव डालता है । तथापि, **आर.** बनाम **पियर्सन**[26] वाले मामले में, न्यायालय ने स्प-ट किया कि इस सिद्धांत को विचारण के प्रक्रम पर लागू किया जाना चाहिए, न कि जमानत के प्रक्रम पर क्योंकि जमानत के दौरान, दोनिता या निर्दोनिता का अवधारण नहीं किया जाता, अतः शास्ति अधिरोपित नहीं की जानी चाहिए ।

2.8 **पियर्सन** वाले मामले में कनाडा के उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त दृ-टांत **राज्य** बनाम **पी. सुगाथन**[27] वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय के दृनिटकोण के अनुरुप और अनुकूल है जहां न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी की स्वतंत्रता के साथ लोक हित का संतुलन हितकारी नियम है । स्वयं विचारण-पूर्व निरोध निर्दोनिता के मूल अवधारणा के प्रतिकूल नहीं है । यह मत व्यक्त किया कि :

> ''सुरक्षा और व्यवस्था सुनिश्चित करना अनुज्ञेय गैर-दंडात्मक उद्देश्य है जिसे विचारण-पूर्व निरोध द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । जहां पूर्वोक्त प्रकृति की अत्यधिक अवधारणाएं जमानत के इनकार की अपेक्षा करती हो, वहां इसका इनकार किया जाना चाहिए ।''

2.9 परिणामतः, यह अनुमान निकाला जा सकता है कि कठोर आवश्यक सीमाओं से परे विचारण-पूर्व निरोध ''अभियुक्त की निर्दोनिता की उपधारणा'' के सिद्धांत को गंभीर खतरा पैदा करता है । जमानत का प्रतिसंहरण अपराध के संबंध में सारवान संभाव्यता और दो-न के स्प-ट और विश्वासोत्पादक साक्ष्य के प्रति ठोस सामग्री द्वारा बहि-कृत किए जाने की अवधारणा पर निर्भर है ।[28] भारत के उच्चतम न्यायालयने यह राय व्यक्त की है कि निर्दोनिता की उपधारणा जमानत के समर्थन द्वारा प्रभावी होगी ।[29]

ख. गैर-विभेदीकरण का अधिकार

2.10 **गुडीकान्ति नरसिंहुल** बनाम **लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय**[30] वाले मामले में भारत के उच्चतम न्यायालयने यह मत व्यक्त किया कि :

> ''जब जमानत नामंजूर हो जाने पर दैहिक स्वाधीनता से वंचित किया जाता है वह अनुच्छेद 21 के अधीन मान्यता प्राप्त हमारी सांविधानिक पद्धति की एक अत्यधिक मूल्यवान वस्तु है कि इसको समाप्त करने की निश्चायक शक्ति ऐसा महानविश्वास है जिसका प्रयोग यूं ही नहीं बल्कि न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए जिसके लिए अत्यधिक चिंता का वि-नय व्यक्ति और समाज होने चाहिए । वैचारिक आदेशों को कुछ अवसरों पर वैवेकिक रूप में आक-र्नक बनाने सें मुकदमेंबाजी मूल अधिकार की विनिश्चायक हो जाती है ।

---

[25] (2002) 3 एस. सी. आर. 309.

[26] (1992)3 एस. सी. आर. 665.

[27] 1988 क्रि. लॉ. जरनल 1036 (केर.)

[28] बैंडी बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका, 81 एस. सी.टी. 197 (1960).

[29] सिद्धराम सत्लिंगप्पा बनाम महारा-ट्र राज्य, ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 312.

[30] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 429.

आखिरकार किसी अभियुक्त अथवा सिद्धदो-न व्यक्ति की दैहिक स्वाधीनता मूलभूत होती है जो विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही विधिक रूप से समाप्त की जा सकती है । अनुच्छेद 21 के अंतिम चार शब्द उन मानवीय अधिकार का प्रणा है । विनियामक शक्ति (पुलिस पावर) का सिद्धांत, लोक व्यवस्था, राज्य की सुरक्षा, रा-ट्रीय अखंडता और साधरणतया लोकहित बनाए रखने की दांडिक प्रक्रिया को सांविधानिक रूप से विधिमान्य बनाता है । यहां तक कि अनतर्वलित महत्वपूर्ण विवाद्यक को ध्यान में रखते हुए, दैहिक स्वाधीनता से वंचन चाहे वह क्षणिक हो अथवा स्थायी, संविधान में विनिर्दि-ट समाज के कल्याणकारी उद्देश्यों से सुसंगत सर्वाधिक गंभीर विचारों पर आधारित होना चाहिए ।''

2.11 भारतीय संविधान के अधीन, विधि सम्मत नियम को विभेद और बल के मनमाने उपयोग से बचने के अनिवार्य औजार के रूप में माना जाता है ।[31] जमानत की वर्तमान प्रणाली जोरदार रूप से आर्थिक हैसियत द्वारा प्रभावित है और कंगाल और निरक्षर के विरुद्ध विभेद करता है । यह प्रतीत होता है कि हमारी न्यायिक से प्रणाली ने जमानत के दो दृ-टिकोण विकसित किए - वित्तीय रूप से समर्थ व्यक्ति के लिए अधिकार के रूप में जमानत और शे-न लोगों के लिए जमानत नयायिक स्वविवेक पर निर्भर है, जिसका प्रयोग ''युक्तिसंगत'' जमानत जो अपेक्षित होगा, के परिणाम के हस्तलाघव के द्वारा किया जाता है ।[32] प्रायः जमानत रकम को अदा करने का मापदंड अभियुक्त व्यक्ति की अदा करने की क्षमता के बनिस्पत असफल रहता है, अतः, स्वतंत्रता की हानि विचारण-पूर्व निरोध में तत्काल है । यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त व्यक्ति की आर्थिक हैसियत विचारण-पूर्व छोड़े जाने की मंजूरी का निश्चायक कारक हो गया है ।[33]

2.12 यू.डी.एच..आर. के अनुच्छेद 2 में यह उल्लेख है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी विभेद के बिना घो-णा में सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है । आई.सी.सी.पी.आर. का अनुच्छेद 2(1) भी यही दोहराता है और आगे प्रत्येक राज्य पक्षकार को विभेद के बिना प्रसंविदा में सभी व्यक्तियों को अपनी अधिकारिता में मान्यता प्रापत अधिकारों का सम्मान करने और सुनिश्चित करने के लिए आबद्ध करता है ।[34] यह और महत्वपूर्ण है कि अनुच्छेद 26 न केवल विधि के समक्ष समता बल्कि विधि के समान संरक्षण का भी उपबंध करता है । इस प्रकार, यह मूलवंश, रंग, लिंग,भा-ा, धर्म, राजनैतिक या रा-ट्रीय उद्भव जैसे सनकपन कारकों पर आधारित किसी विभेद का प्रति-ोध करता है ।[35]

2.13 **इउवर्ड** बनाम **कैल्यीफोर्निया**[36] वाले मामले में यूनाइटेड स्टेट्स उच्चतम न्यायालय ने

---

[31] भारत के संविधान का अनुच्छेद 14.

[32] काबेल फुटे, '' जमानत में संवैधानिक संकट'' 113 यू. पी.ए. विधि समीक्षा. 1125, 1180 (1965)

[33] जमानत और गरीबी के खिफाल भोदभाव देखें : वाहन के सुधार के रूप में नागरिक अधिकार कार्रवाई, 9 वॉल्म. यू. एल. समीक्षा 167 (1974).

[34] संयुक्त रा-ट्र मानव अधिकार सीमित (एच.आर.सी.), आई.सी.सी.पी.आर. सामान्य टिप्पणी सं. 18 : गैर-भेदभाव, 10 नवंबर, 1989.

[35] -वही- सिद्धांत 5(1), किसी भी प्रकार की रोकथाम या कारावास के तहत सभी व्यक्तियों के संरक्षण के लिए संयुक्त रा-ट्र संस्था का सिद्धांत ; नियम (1), कैदियों के उपचार के लिए मानक न्यूनतम नियम ।

[36] 314 यू. एस. 160 (1941).

यह अभिनिर्धारित किया कि निधियों के बिना होने की मात्र स्थिति मूलवंश, पंथ या रंग जैसे असंगत तथ्य-संगठनात्मक रूप से तटस्थ है । इसके अतिरिक्त, **हाब्सन** बनाम **हेनसेन**[37]वाले मामले में दरिद्रता और समानता का विस्तार करते हुए न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि सामान्य राजनैतिक प्रक्रियाओं के द्वारा निर्धन समूहों को हमेशा पूर्ण और उचित सुनवाई सुनिश्चित नहीं किया गया है क्योंकि वर्तमान सत्ता ढांचा राजनैतिक शांत और अदृश्य अल्पसंख्यक के मान्य हेतों के लिए भी थोड़ा ध्यान देना चाहती है । ये धारणाएं ऐसे प्रशासनिक निर्णय जो उन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, के सघन न्यायिक निगरानी और पुनर्विलोकन के प्रति प्रेरत करती है ।

2.14 यूनाइटेड स्टेट के उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि जमानत को अत्यधिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि जब उसके लिए उतनी रकम लगती है जो प्रतिवादी की समर्थता से अधिक है, यदि उक्त रकम युक्तिसंगत है ।[38] प्रतिकूलतः, **ग्रिफिन** बनाम **इलिनास**[39] वाले मामले में यू. एस. उच्चतम न्यायालय ने अपने विसम्मत निर्णय में यह प्रश्न किया : ''किसी युक्तिसंगत रकम पर जमानत क्यों नियत की जाए यदि गरीब व्यक्ति इसका भुगतान नहीं करसकता ? अयुक्तियुक्ततः काफी अधिक जमानत के अधिदेश का यह प्रभाव है कि निर्धन व्यक्ति को विधियों के समान संरक्षण से वंचित किया जाता है, यदि उसे एकमात्र उसकी निर्धनता के कारण अपराध के अन्य गैर-निर्धन अभियुक्त व्यक्ति के साथ समान निबंधनों पर उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है ।''[40]

2.15 आर्थिक शर्त अर्थात् धनीय प्रतिभू पर जमानत की मंजूरी या इनकारी भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 का अतिक्रमण करता है और संवैधानिक प्रवृत्ति के प्रतिकूल है । तथापि, इसका ईप्सित उद्देश्य अर्थात् दो-ी साबित होने तक निर्दोनिता की उपधारणा के साथ विचारण के प्रत्येक प्रक्रम पर होने वाले आवश्वासन के साथ कोई सह-संबंध नहीं है ।[41] तथापि, यह ध्यातव्य है कि प्रत्येक मामले में जहां निर्धन व्यक्ति जमानत लेने के लिए असमर्थ है वहां निर्धन व्यक्ति के विरुद्ध भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए किंतु राज्य केवल कुछ प्रतिभूति की मांग करता है कि ऐसा अभियुक्त विचारण पर हाजिर होगा ।[42] एक व्यक्ति के मामल के समपहरण का खतरा एक व्यक्ति के छोड़े जाने की शर्तों को तोड़ने के प्रलोभन का प्रभावी निवारक हो सकेगा ।[43] इस प्रकार भिन्न-भिन्न वित्तीय हैसियत के व्यक्ति जमानत के भिन्न-भिन्न रकमों पर विचारण के समक्ष हाजिर होने का प्रलोभन पाएंगे, किंतु यह केवल तार्किक प्रतीत होता है कि जमानत की प्रभावी प्रणाली व्यक्तिगत क्षमता के सापेक्ष है जबकि ऐसी रकम स्थिर

---

[37] 296 एफ. सप्ली. 401 (डी.डी.सी. 1967) उप नाम की पुन्टि . स्मैक बनाम हॉबसन 408 एफ. 2डीर. 175 (डी. सी. क्रि. 1969).

[38] स्टैक बनाम बॉयल, 342 यू. एस. 1 (1951) एलन आर. सैच, निर्धन न्यायालय लागत और जमानत ; समान संरक्षण के लिए उन पर प्रभार, 27 मद्रास ला. रिव्यू. 154 (1967)

[39] 351 यू. एस. 12 (1956).

[40] बेंडी बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका, 81 एस. क्रि. 197 (1960).

[41] पूर्वोक्त टिप्पण 32.

[42] 4 क्रि. प्रक्रि. एस 12.2(ख) (3डी. ईडी.) पेन्नेल बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका का हवाला देते हुए, 320 एफ. 2डी. 698. (डी. सी. क्रि. 1963) (बैजलोन, सी.जे., भाग में सहमति और भाग में असहमति).

[43] पूर्वोक्त टिप्पण 40.

की जाती है ।[44] वित्तीय नियंत्रण और उद्देश्यपरक निर्धारण पर आधारित जमानत की वर्तमान प्रणाली वर्गीकरण और विभेद को संदेह पैदा करती है । तथापि, यह नि-पक्ष विचारण के मूल अधिकार का भी अतिक्रमण करती है ।

ग. मनमाने निरोध से स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार

2.16 यू. डी. एच. और[45] आई.सी.सी.पी.आर. को उद्देश्य 9(1) स्वतंत्रता, सुरक्षा और मनमाने निरोध के विरुद्ध संरक्षण के मूल अधिकार का उल्लेख करता है । इस मूल अधिकार के आधार पर राज्य को मनमानी गिरफ्तारी और निरोध के विरुद्ध नागरिकों की स्वतंत्रता और सुरक्षा के संरक्षण और प्रतिरक्षण करने की बाध्यताधीन बनाया गया है । निरोध को विधिसम्मत बनाने कि मनमाना करने के लिए, इसे रा-ट्रीय और अंतरारा-ट्रीय विधियों और मूल अधिकारों का संरक्षण करने वाले सिद्धांतों और मार्गदर्शक मानकों के अधि-ठायी नियमों से संगत होना चाहिए ।

2.17 **अर्ल्बट वूमह मुकांडा** बनाम **कैमरुन**[46] वाले मामले में मानव अधिकार समिति (इसमें इसके पश्चात् एच.आर.सी.) ने यह अभिनिर्धारित किया कि विधिसम्मत गिरफ्तारी के अनुसरण में अभिरक्षा हमेशा विधिसम्मत, युक्तियुक्त और गैर-मनमाना होना चाहिए । इसके अतिरिक्त, यह सभी परिस्थितियों, अर्थात् झगड़े को निवारित करने, साक्ष्य के साथ हस्तक्षेप या अपराध की पुनरावृत्ति, में आवश्यक होना चाहिए । अन्य बातों के साथ-साथ विचारण-पूर्व निरोध को मनमाना पाया गया है, जहां कोई आरोप नहीं लगाया गया है, जब निरोध की अवधि अनिश्चित है या अत्यधिक हो जाती है, निरोध स्वतः लागू हो जाता है या जमानत की कोई संभावना नहीं है औरयदि विचारण-पूर्व निरोध संभाव्य दंडादेश की लंबी अवधि के अनुसार निर्धारित किया गया है ।[47] इसी प्रकार, ई. सी. ए. आर. व्यक्तियों का निरोध या डिमांड का पुनर्विलोकन करने की संतुलन कसौटी का उपयोग करता है । सतत निरोध को तभी न्यायोचित ठहराया जा सकता है यदि निर्दोनिता की उपधारणा के होते हुए भी लोकहित के स्ववाभाविक अपेक्षा की ऐसी विनिर्दि-ट संकेत हैं जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सम्मान के नियम से अधिक महत्वपूर्ण है ।[48]

2.18 न्यायालयों ने यह भी पाया कि निरोध को तभी न्यायोचित ठहराया जाएगा यदि यह विचारण पर उपस्थित होने की असफलता, साक्ष्य या साक्षियों से हस्तक्षेप, न्याय में अड़चन, जमानत के समय अपराध करने का जोखिम ; स्वयं या अन्य के लिए अपहानि या जोखिम कारित करने वाला, लोक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त को निवारित करने वाला ; अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथित अपराध करने या युक्तियुक्त संदेह, और अपराध की गंभीरता जैसे विधिसम्मत आधारों के अनुसरण में आवश्यक था । यू. एस. उच्चतम न्यायालय ने **सलेरनो** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि विचारण-पूर्व निरोध उपबंध को प्रभावी बनाने के लिए उच्च

---

[44] हेलमैन, " द राइट टू ए पेपर बेल" बेंच एंड बार, केंटकी बार एसोसिएशन (2016).

[45] अनुच्छेद 3 पढ़े ; " प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की स्वतंत्रता और व्यक्ति की सुरक्षा का अधिकार है, अनुच्छेद 9 पढ़ें ; किसी को भी मनमाने तरीके से गिरफतारी, निरोध या निर्वासन के अधीन नहीं किया जाएगा ।

[46] 10 अगस्त, 1994 का संप्रे-ण सं. 458/1991, यू. एन. डॉक. आई.सी.सी.पी.आर./सी./51/डी./458/1991 .

[47] मानव अधिकार समीति (2006) का नि-क-र्न निकालना " इटली (सीसीपीआर/सी/आईटीए/सीओ/5) पैरा 14 पर .

[48] डब्ल्यू. बनाम स्वीटजरलैंड, 254 यूरो. सी.टी. एच. आर. (खंड क) 15 (1993) पर.

निक-ा रखता है और इस उपधारणा पर प्राख्यान किया कि सरकार ने पहले ही निश्चायक और असंदिग्ध साक्ष्य के साथ ''गंभीरता'' को पु-ट करने के भार का वहन किया है ।

2.19 स्वतंत्रता का अधिकार और मनमाने निरोध के विरुद्ध अधिकार किसी रूप में निरोध या कारावास के अधीन सभी व्यक्तियों के संरक्षण के यू. एन. सिद्धांत विशे-ाकर सिद्धांत से 9, 12, 13 और 36(2) और गैर-अभिरक्षा उपायों हेतु संयुक्त रा-ट्र मानक न्यूनतम नियम (टोक्यो नियम) के नियम 3 में पाया जाता है ।

2.20 **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[49] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुच्छेद 21 के अधीन प्रक्रिया उचित, ऋजु और साम्यापूर्ण होनी चाहिए । किसी व्यक्ति को उसके प्राण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने के पूर्व, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का कठोरता से पालन किया जाना चाहिए और प्रभावित व्यक्ति के गैर लाभ के लिए विपथित नहीं होना चाहिए ।[50] **जोगिन्दर कुमार** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[51] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 और 22 के आलोक में गिरफ्तार व्यक्तियों के अधिकारों पर निदेश दिया । इसी प्रकार, **गुडिकांति नरीसिंहुलु** बनाम **लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायलय**[52] वाले मामले में, न्यायमूर्ति बी. आर. कृ-ण अय्यर ने यह मत व्यक्त किया कि जमानत से इनकारी अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' से व्यक्ति को वंचित करता है । जमानत मंजूर करना व्यक्ति और समुदाय के प्रति सजीव चिंता के साथ आकस्मिकतः नहीं बल्कि न्यायिकितः प्रयोक्तव्य परम विश्वास है । **राजेश रंजन यादव** बनाम **सी. बी. आई.**[53] वाले मामले में न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि यद्यपि अनुच्छेद 21 का बहुत महत्व है किंतु अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के स्वतंत्रता के अधिकार और समाज के हित बीच संतुलन बनाए रखा जाना चाहिए ।[54] कोई अधिकार पूर्ण नहीं हो सकता है और अधिकारों के प्रयोग पर युक्तियुक्त निर्बंधन लगाया जा सकता है । लंबी अवधि के कारावास के कारण जमानत की मंजूरी को आत्यंतिक नियम नहीं कहा जा सकता क्योंकि जमानत के आधार संदर्भगत तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होने चाहिए ।

2.21 उच्चतम न्यायालय ने **करतार सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[55] वाले मामले में यह स्प-ट किया कि जब टाडा के अधीन अभिहित न्यायालय जमानत से इनकार करता है तो यह संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन जमानत के आवेदन पर विचार करने के उच्च न्यायालयों की शक्ति को नहीं छीनता । आगे यह अभिनिर्धारित किया :

''अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन किसी मामले के संबंध में

---

[49] ए. आई. आर. 1978 एस.सी. 597.

[50] बशीरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1968 एस.सी. 1313 ; नरेन्द्र पुर-ोत्म उमराव बनाम बी. बी. गुजराल, ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 420 भी देखें ।

[51] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1349.

[52] पूर्वोक्त टिप्पण 30.

[53] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 451.

[54] एम. आर. मल्लिक, जमानत : लॉ एंड प्रैक्टिस 8 (इस्टर्न लॉ हाऊस, कोलकाता, 2009).

[55] (1994) 3 एस. सी. सी. 569.

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के लागू हाने का अपवर्जित करने वाले टाडा अधिनियम की धारा 20(7) को संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रति-ठापित किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को वंचित करने वाली नहीं कहा जा सकता ।"

घ. शीघ्र और ऋजु विचारण का अधिकार

2.22 शीघ्र विचारण के अधिकार को मनमाने निरोध के विरुद्ध स्वतंत्रता, सुरक्षा और संरक्षण के अधिकार का विस्तार और दो-ी साबित न होने तक निर्दो-िता की उपधारणा किए जाने के अधिकार का पूर्वग्रामी कहा जा सकता है । यह अधिक सर्वव्यापी है और अभियुक्त व्यक्ति द्वारा ऐसे अधिकार के किसी अनुरोध या अवलंब पर अनुकूलित नहीं है । ऐसा अभियुक्त यह अवधारित करने के लिए कि क्या आरंभिक निरोध न्यायोचित है और क्या अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए, न्यायालय को समर्थ बनाने के लिए असम्यक् विलंब के बिना न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने का हकदार है । आई.सी.सी.पी. और ई.सी.एच.आर. दोनों में यह उपबंध है कि युक्तियुक्त जमानत पर अभियुक्त का छोड़ा जाना शीघ्र रीति से आरोपों पर विनिश्चय करने की असफलता एक उपचार है ।[56] इसके अलावा, आई.सी.पी.आर. के अनुच्छुद 9(3) में यह उल्लेख है कि निरुद्ध व्यक्ति का तत्काल प्राधिकारियों के समक्ष लाया जाएगा और यह कि निरोध सामान्य नियम नहीं है । यू.एस. उच्चतम न्यायालय ने कठोर संवीक्षा के भीतर शीघ्र विचारण के अधिकार पर विचार किया क्योंकि उसने इस अधिकार के अतिक्रमण के लिए साधारण उपचार के रूप में पूर्वाग्रह के साथ आरोपों की खारिजी विहित किया है ।[57]

2.23 **हुसैआरा खातून** बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य**[58] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने ऐसे विचाराधीन कैदियों के छोड़े जाने का आदेश दिया जिनके कारावास की अवधि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) जो क्रमशः 60-90 दिनों की समाप्ति पर विचाराधीन कैदियों के छोड़े जाने का अधिदेश देता है, की बाबत मजिस्ट्रेट की असफलता को इंगित करते हुए उनके अपराधों के लिए कारावास की अधिकतम अवधि से अधिक हो गई थी । शीघ्र विचारण के अधिकार के मुद्दे पर न्यायमूर्ति भगवती ने यह मत व्यक्त किया कि विचाराधीन कैदी कारावास में है क्योंकि वे पददलित और गरीत थे न कि इसलिए कि वे दो-ी हैं । **अब्दुल रहमान अंतुल** बनाम **आर. एस. नायक**[59] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने देश के सभी न्यायालयों के लिए शीघ्र विचारण हेतु मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किया :

- संविधान के अनुच्देद 21 में निहित उचित ऋजु और युक्तियुक्त प्रक्रिया अभियुक्त के पक्ष में शीघ्रता से विचारण किए जाने का अधिकार सृजित करता है । यह सभी लोगों के हित में है कि अभियुक्त का दो-न या निर्दो-न का अवधारण यथाशीघ्र ऐसी परिस्थितियों में किया जाता है ;

---

[56] पूर्वोक्त टिप्पण 1.

[57] स्ट्रंक बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका, 412 यू. एस. 434, 439-40 (1973) (वैकल्पिक उपचारों पर विचार करना किंतु यह नि-कर्न निकालना किंतु अस्वीकरण केवल संभव उपचार बना रहना चाहिए).

[58] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1360.

[59] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1701.

● अनुच्छेद 21 से निःसृत शीघ्र विचारण का अधिकार सभी प्रक्रमों को अर्थात् अन्वे-ण, जांच, विचारण, अपील, पुनरीक्षण और पुनर्विचारण को समाहित करता है ;

● अभियुक्त को उसकी दो-नसिद्धि के पूर्व असम्यक् या अनावश्यक निरोध के अधीन नहीं रखा जाना चाहिए ;

● उसके व्यवसाय और शांति के प्रति चिंता, उत्कंठा, व्यय और व्यवधान और असम्यक् लंबे अन्वे-ण जांच या विचारण के परिणामस्वरूप कम से कम होनी चाहिए ;

● साक्षियों या अन्यथा की मृत्यु गायब या अनुपलब्धता के कारण अभियुक्त की स्वयं की प्रतिरक्षा करने की योग्यता के अड़चन के परिणामस्वरूप असम्यक् विलंब हो सकता है ; और

● तथापि, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि प्रायः अभियुक्त कार्यवाहियों को विलंबित करने में हितबद्ध रहते हैं । विलंब बचाव की ज्ञात युक्ति है । क्योंकि अभियुक्त दो-न को साबित करने काभार अभियोजन पर रहता है इसी लिए सामान्यतः विलंब अभियोजन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है । तथापि, साक्षियों की अनुपलब्धता, समय के व्यपगत होने के कारण साक्ष्य का गायब होना अभियोजन के हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं ।

2.24 इस प्रकार, जमानत के संबंध में, शीघ्र विचारण की प्रत्याभूति कई उद्देश्यों को पूरा करती है अर्थात् दमनात्मक विचारण-पूर्व निरोध के विरुद्ध संरक्षण उपलब्ध कराती है, अनिर्णीत आपराधिक आरोपों के कारण चिंता और सार्वजनिक संदेह से अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को मुक्त करती है ; साक्ष्य की हानि के जोखिम से संरक्षण प्रदान करती है, और प्रत्येक अभियुक्त को स्वयं की प्रतिरक्षा करने में समर्थ बनाती है ।[60] जमानत जांच ऐसी न्यायिक प्रक्रिया है जिसका संचालन नि-पक्षतः और न्यायिकतः तथा कानूनी और संवैधानिक अधिदेशों[61] के अनुसार किया जाना चाहिए । निधि या संसाधनों की कमी अनुच्छेद 21, 19 और 14 तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्व- अनुच्छेद 39क से उत्पन्न न्याय के अधिकार की इनकारी का कोई बचाव नहीं है।[62] जमानत की संस्थाका पारंपरिकतः आधारभूत उद्देश्य संविधान के सिद्धांतों के अनुसार व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ाते हुए विचारण पर अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की हाजिरी सुनिश्चित करना है ।[63] दंड प्रक्रिया संहिता और अन्य विधानों को यह सुनिश्चित करते हुए इन संवैधानिक अधिदेशों को प्रतिबिम्बित करते हुए संशोधित किया जाए कि न्याय और अपराध के निवारण की पहल मंद न हो ।

---

[60] रंजन द्विवेदी बनाम सी.बी.आई., महानिदेशक के माध्यम से ; ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 3217.

[61] मजाली बनाम एस. (41210/2010) (2011) जेडएजीपीजेएचसी. 74 पैरा 33.

[62] पी. राम्द्राचंद्रा राव बनाम कर्नाटक राज्य, ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1856.

[63] एस. वी. डालमिनी और अन्य बनाम एस.वी. जॉबर्ट ; एस. वी. स्किये्टेट (1999) जे.ए.सी.सी. 8 ; 1999 (7) बी.सी.एल.आर. 771 (सी.सी.).

अध्याय 3

जमानत की परिभा-ा

3.1 जमानत पद को दंड प्रक्रिया संहिता में परिभा-ित नहीं किया गया है ।[64] फिर भी, 'जमानत' शब्द का प्रयोग दंड प्रक्रिया संहिता में कई बार किया गया है और अंतररा-ट्रीय संधियों/प्रसंविदाओं के अधीन यथा विहित मानव अधिकारों के संरक्षण के साथ-साथ संविधान के भाग 3 और 4 में प्रति-ठापित मूल सिद्धांतों के अनुरूप आपराधिक न्याय प्रणाली की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है ।

3.2 ब्हार्टन लेक्सिकन और इस्ट्रायड न्यायिक शब्दकोश जमानत को ''विधि की अभिरक्षा से उसे उन्मुक्त कर प्रतिवादी को स्वतंत्र रखने और उसे ऐसे प्रतिभुओं की अभिरक्षा में सौंपने जो विनिर्दि-ट तारीख और समय पर उसके विचारण के लिए उसे हाजिर करने के लिए दायी हैं ।'' के रूप में परिभा-ित करते हैं ।

3.3 हाल्सबरी लाज आफ इंग्लैंड के अनुसार :[65]

> ''..... जमानत मंजूर करने का आशय प्रतिवादी (अभियुक्त) को स्वतंत्र छोड़ना नहीं है, किंतु उसे विधि की अभिरक्षा से उन्मुक्त करना और उसे उसके ऐसे प्रतिभुओं की अभिरक्षा में सौंपना है जो विनिर्दि-ट समय और स्थान पर उसके विचारण के लिए उसे हाजिर करने के लिए बाध्य हैं । प्रतिभू किसी समय अपना मूलधन अभिगृहीत कर सकते हैं और विधि की अभिरक्षा में उसे सौंपकर स्वयं उनमोचित हो सकते हैं और तब उसे कारावास में डाल दिया जाएगा ।''

3.4 ''जमानत'' शब्द का शाब्दिक अर्थ प्रतिभू है ।[66] अतः, जमानत व्यक्तिगत बंधपत्र या प्रतिभू सहित अभिरक्षा से छोड़े जाने को निर्दि-ट करता है । जमानत स्वयं की प्रत्याभूति (व्यक्तिगत बंधपत्र/मुचलका भी कहा जाता है) या तृतीय पक्षकार प्रतिभू के द्वारा धनीय प्रत्याभूति के अधीन रहते हुए छोड़े जाने का अवलंब लेता है । उच्चतम न्यायालय ने **मोती राम**[67] वाले मामले में भी इस परिभा-ा को दोहराया है ।

3.5 'जमानत' का तत्वतः अभिप्राय प्रतिभू सहित या रहित मुचलके पर अभिरक्षा में पकड़े गए अपराध के संदिग्ध व्यक्ति की अंतरिम न्यायिक उन्मुक्ति से है कि संदिग्ध व्यक्ति बाद वाले तारीख पर आरोपों का उत्तर देने के लिए हाजिर होगा ; और विधि के अधीन किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को जमानत की मंजूरी सम्मिलित है ।

3.6 जमानत की प्रणाली किसी आपराधिक न्याय प्रणाली में विरोध पैदा करता है क्योंकि यह ऐसे अभियुक्त व्यक्ति के विरोधी हितों को सुलझाने का प्रयास करता है जो स्वतंत्र बना

---

[64] वामन नारायण घिया बनाम राजस्थान राज्य, (2009) 2 एस. सी. सी. 281.

[65] इंग्लैंड का हल्स्बरी विधि, वॉल्म. ।। पैरा 166 (चौथा संस्करण, 1998).

[66] सुनील फूलचंद शाह बनाम भारत संघ, ए. आई.आर. 2000 एस.सी. 1023.

[67] पूर्वोक्त टिप्पण 3.

रहना चाहता है और राज्य जो यह सुनिश्चित करने के बाध्यताधीन है कि ऐसा अभियुक्त विचारण पर तत्परतापूर्वक हाजिर हो ।[68] जमानत पर वर्तमान परिदृश्य आपराधिक न्याय प्रणाली में एक विरोधाभास है क्योंकि इसका सृजन अभियुक्त व्यक्ति की उन्मुक्ति को सुकर बनाने के लिए किया गया किंतु अब उन्हें उन्मुक्त करने से इनकार करने के लिए क्रियान्वित है । तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता की विभिन्न धाराओं की जमानत के उपबंधों से यह उपदर्शित है कि संदर्भ जिसमें इसका प्रयोग किया गया है, वह उसकी हाजिरी के लिए प्रतिभूति लेकर व्यक्ति को स्वतंत्र करने के रूप में है ।

3.7 भारत के उच्चतम न्यायालय के अनुसार, जमानत का आवि-कार मानव मूल्यों की दो आधारभूत अवधारणाओं को प्रभावी बनाने की तकनीक के रूप में किया गया है, अर्थात् अभियुक्त व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उपभोग करने का अधिकार और लोकहित ; जिसके अधीन उन्मुक्ति को प्रतिभू पर अभियुक्त व्यक्ति को विचारण पर न्यायालय में उपस्थित करने की शर्त डाली गई है ।[69] उदाहरणार्थ **इलोक अभियोजक** बनाम **जार्ज विलियम** उर्फ **विक्टर**[70] वाले मामले में, मद्रास उच्च न्यायालय ने जमानत की अवधारणा को स्प-ट करते हुए यह मत व्यक्त किया कि जमानत या मुख्य पुरस्कार का अभिप्राय कारागार के विपरीत अभियुक्त व्यक्ति को उनके प्रतिभुओं की अभिरक्षा में उपनिधान या परिदान से है । तर्काधार यह है कि वे विकल्प के कारागारिक हैं और उनका ऐसे अभियुक्त पर आधिपत्य और नियंत्रण होगा । यदि प्रतिभू जमानत की अवधि के दौरान अभियुक्त व्यक्ति पर नियंत्रण नहीं कर सकते तो स्वभावतः न्यायालय राज्य को अभिरक्षा देने के लिए हस्तक्षेप करेगा ।

---

[68] पूर्वोक्त टिप्पण 32, 290 पर.

[69] कमलापति त्रिवेदी बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य, ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 77.

[70] ए. आई. आर. 1951 मद्रा. 1042.

अध्याय 4

भारत में विधिक उपबंध और जमानत तंत्र

4.1 जमानत की अवधारणा ऐसा व्यक्ति जिसके द्वारा अपराध किया जाना अभिकथित है, की स्वतंत्रता को निर्बंधित करने की पुलिस शक्ति और अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के पख में निर्दो-न की उपधारणा के बीच विरोध से उभरती है । जमानत एक तंत्र समझा जाता है जिसके द्वारा राज्य कैदियों की हाजिरी उपार्जित करने का कृत्य समुदाय पर अधिरोपित करता है और वहीं न्याय प्रशासन में समुदाय की भागीदारी अंतवर्लित करता है ।[71] जमानत मंजूर करने के से संबंधित उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 33, धारा 436-450 के अधीन अनु-ठापित हैं । अपराधों को जमानतीय और अजमानतीय तथा ''संज्ञेय'' और ''असंज्ञेय'' में वर्गीकृत किया गया है । संज्ञेय अपराध ऐसे अपराध है जिनका अन्वे-ण पुलिस द्वारा मजिस्ट्रेट से किसी अनुज्ञा के बिना किया जा सकता है । इसके प्रतिकूल, असंज्ञेय अपराध से यह अभिप्रेत है कि पुलिस के पास मजिस्ट्रेट के प्राधिकार अभिप्राप्त किए बिना ऐसे अपराध का अन्वे-ण करने का कोई प्राधिकार नहीं है । पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय जमानत पर विचार करने, जमानत पर शर्तें अधिरोपित करने, जमानत या अग्रिम जमानत को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन सशक्त हैं ।

क. गिरफ्तारी

4.2 किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी या विरोध या आशंका समुचित न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए आवेदन करने की पूर्व-अपेक्षा है । तथापि, अग्रिम जमानत आवेदनों के मामलों में, ऐसी गिरफ्तारी या निरोध पूर्व अपेक्षा नहीं है । अतः जमानत विधि को दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 5 की गिरफ्तारी और निरोध से संबंधित विधियों पर ध्यान देना चाहिए । वारंट सहित या रहित गिरफ्तारी और ऐसे व्यक्तियों के अधिकार जो गिरफ्तार किए गए हैं, से संबंधित विधि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 से 60 में अंतर्वि-ट हैं । सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रायः प्रयुक्त उपबंध ऐसे किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति है जिसका संबंध किसी संज्ञेय अपराध से है या जिसके विरुद्ध युक्तियुक्त परिवाद किया गया है या विश्वसनीय सूचना प्राप्त हुई है या यदि युक्तियुक्त संदेह विद्यमान है ।[72]

4.3 अपनी 154वीं रिपोर्ट में, भारतीय विधि आयोग ने गिरफ्तारी विधि का पुनर्विलोकन किया[73] और रा-ट्रीय पुलिस आयोग की तीसरी रिपोर्ट में निकाले गए नि-कर्-ा का समर्थन किया कि ''गिरफ्तारियों का अधिकांश भाग बड़े छोटे अभियोजनों से संबद्ध थे इसलिए, अपराध निवारण की दृ-टि से यथवश्यक नहीं समझा जा सकता है'' ।[74] इस नि-कर्-ा के आधार पर कि

---

[71] वामन नारायण घिया बनाम राजस्थान राज्य, ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1362 और संजय चंद्रा बनाम सी. बी. आई. (2012) 1 एस. सी. सी. 440.

[72] धारा 41 (1 और 2), भा. दं. सं.

[73] चौदहवें विधि आयोग द्वारा 154वीं रिपोर्ट, भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1996), वॉल्म. । और ।।

[74] रा-ट्रीय पुलिस आयोग की तीसरी रिपोर्ट 31 (1980).

60 प्रतिशत से अधिक गिरफ्तारी अनावश्यक थी और कारागार व्यय का 42.3 प्रतिशत ऐसी गिरफ्तारियों के कारण है[75], रा-ट्रीय पुलिस आयोग ने सिफारिश की कि संज्ञेय अपराध के अन्वे-ण के दौरान गिरफ्तारी तभी न्यायोचित होगी जब[76] :

(i) मामला हत्या, डकैती, लूट बलात्संग आदि जैसे गंभीर अपराध के बारे में हो और अभियुक्त को गिरफ्तार करना और आतंकवाद ग्रस्त पीड़ितों में विश्वास पैदा करने के लिए उसके संचरण पर अवरोध लगाना आवश्यक है ;

(ii) अभियुक्त के फरार होने और विधि की प्रक्रिया को प्रवंचित करने की संभावना है ;

(iii) अभियुक्त उग्र बर्ताव करता है और आगे और अपराध करने की संभावना है जब तक उसके संचरण को अवरोध के अधीन नहीं लाया जाता ; और

(iv) अभियुक्त आदतन अपराधी है और जब तक उसे अभिरक्षा में नहीं रखा जाता उसके द्वारा आगे समान अपराध करने की संभावना है ।

4.4 जोगिन्दर कुमार बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[77] राज्य वाले मामले में भारत के उच्चतम न्यायालयने यह मत व्यक्त किया कि गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग नैमित्तिक ढंग से नहीं किया जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि परिवादी के सद्भाव व्यक्ति की सदोि-ता का युक्तियुक्त विश्वास और गिरफ्तार करने की आवश्यकता के बारे में अन्वे-ण किए बिना कोई गिरफ्तारी नहीं की जानी चाहिए ।

4.5 **जोगिन्दर कुमार** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों को दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2008 (2009 का 5) के अधिनियम द्वारा कानूनी आकार मिला । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 को ऐसे संज्ञेय अपराधों के लिए गिरफ्तारी की शक्ति को सीमित करने के लिए संशोधित किया गया जिसके लिए दंड सात व-र्ा या कम है । संशोधन में आगे अभिधारित है कि पुलिस अधिकारी गिरफ्तारी करने या न करने के लिए अपने कारण लेखबद्ध करेगा । तत्पश्चात् वारंट के बिना गिरफ्तारी की विधि संगतता 'संभावय हेतुक' पर आधारित होनी चाहिए । यह अधिकारी के ऐसे ज्ञान और जानकारी के भीतर तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो युक्तिसंगत और विश्वसनीय होनी चाहिए ।[78]

4.6 उच्चतम न्यायालय ने **अरनेश कुमार** बनाम **बिहार राज्य**[79] वाले मामले में गिरफ्तारी की शक्ति की पुनर्विलोकन किया और निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए :

● गिरफ्तारियां स्वतः नहीं होनी चाहिए बल्कि पुलिस अधिकारी को गिरफ्तारी क्यों ? का प्रश्न पूछकर गिरफ्तारी की आवश्यकता के बारे में स्वयं का समाधान करना चाहिए ।

---

[75] -वही-

[76] पूर्वोक्त टिप्पण 74, 32 पर.

[77] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1349.

[78] केर्र बनाम कैलिफोर्निया, 374 यू. एस. 23 (1963), ब्रिनेगर बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका, 338 यू. एस. 160, 338 यू. एस. 175 (1949) देखें, केरोली बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका, 267 यू. एस. 132, 267 यू. एस. 162 (1925) से उद्धृत ।

[79] (2014) 8 एस. सी.. 273.

क्या वास्तव में इसकी अपेक्षा है । यह क्या प्रयोजन पूरा करेगा ? इससे क्या लक्ष्य प्राप्त होगा ?;

• पुलिस अधिकारी को धारा 41(1)(ख)(ii) के अधीन उपखंडों में विनिर्दि-ट जांच सूची से सुसज्जित होना चाहिए । यह जांच सूची ऐसे कारणों और सामग्री जिससे गिरफ्तारी करना आवश्यक हुआ जब अभियुक्त को आगे निरोध के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया, के साथ मजिस्ट्रेट को अग्रेनित की जानी चाहिए । मजिस्ट्रेट निरोध प्राधिकृत करते समय पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट का परिशीलन करेगा और अपना समाधान लेखबद्ध करने के पश्चात् ही मजिस्ट्रेट निरोध प्राधिकृत करेगा ;

• अभियुक्त को गिरफ्तार न करने का विनिश्चय मामले के संस्थित किए जाने की तारीख से दो सप्ताह के भीतर मजिस्ट्रेट को अग्रेनित किया जाए जिसका विस्तार जिला पुलिस अधीक्षक द्वारा लेखबद्ध कारणों से बढ़ाया जा सकेगा ;

• संबद्ध न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा यथापूर्वोक्त कारण अभिलिखित किए बिना निरोध प्राधिकृत करने के लिए विभागीय कार्रवाई की जाएगी ;

• मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन यथा उपबंधित यौबीस घंटे से परे निरोध प्राधिकृत करते समय अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए । निरोध का आदेश कठोर रीति से नहीं किया जाना चाहिए और मजिस्ट्रेट अपना निजी समाधान अभिलिखित करेगा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41(1)(ख) के निबंधनों का पालन किया गया है ।

4.7 आगे, यह सुनिश्चित करने के लिए, कि ऐसा व्यक्ति जो गिरफ्तार नहीं है, अन्वे-ण के लिए उपलब्ध है, पूर्वोक्त संशोधन द्वारा धारा 41क संहिता में अंतःस्थापित की गई जिसमें यह उपबंध है कि जहां ऐसा पुलिस अधिकारी, जिसने यह विनिश्चित किया कि उसे व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं करना चाहिए, नोटिस जारी कर विनिर्दि-ट स्थान पर व्यक्ति से उसके समक्ष हाजिर होने की अपेक्षा कर सकता है । यदि व्यक्ति निबंधनों का पालन नहीं करता या स्वयं की पहचान कराने का अनिच्छुक है तो पुलिस अधिकारी नोटिस में वर्णित अपराध के लिए उसे गिरफ्तार कर सकेगा ।[80]

4.8 आपराधिक न्याय प्रणाली और भारत के संविधान के अधीन विद्यमान विधिक उपबंधों की अपेक्षा को पूरा करने के लिए यह वांछनीय और आवश्यक है कि जब कभी पुलिस अधिकारी अजमानतीय अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तार करता है तो उसे ऐसे अभियुक्त को सूचित करना चाहिए कि वह निःशुल्क विधिक सहायता पाने का हकदार है और जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन भी कर सकता है । अधिकारी यथासंभव उस भा-ा में उसे प्रक्रिया के बारे में उसे बतायाएगा जो अभियुक्त व्यक्ति समझता है ।

[80] धारा 41क(4), भा. दं. सं.

4.9 न्यायालयों ने प्रायः यह मत व्यक्त किए हैं कि संहिता के उपबंध, विशे-कर अभियुक्त के लिए लभकर का पालन पुलिस द्वारा नहीं किया जाता है और न्यायालय ऐसे व्यतिक्रम को गंभीरता से नहीं लेती उपरोक्त की दृ-टि से यह आवश्यक है कि यदि पुलिस धारा 41 के मानकों का पालन नहीं करती और न्यायिक अधिकारी भी इसकी अनदेखी करते हैं तो राज्य उनके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाहियां आरंभ कर सकती है । क्रमशः पुलिस अधिकारी या न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करने हेतु राज्य या उच्च न्यायालय को समर्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उच्च न्यायालय तदनुसार विद्यमान नियमों में संशोधन करेगा ।

4.10 सुस्प-टतः आपराधिक विधि में आपराधिक न्याय पर तार्किक निर्बंधनों को एक तरफ कर आपराधिक न्याय के रूप में निवारक निरोध को अविरत करने की गहरी संस्थापित पद्धति है ।[81] ऐसी मनमानी पद्धति न केवल समुदाय को कुशलतापूर्वक संरक्षित करने में असफल रहती हैं बल्कि उचित ढ़ंग से अभियुक्त व्यक्ति के संबंध में विचार करने पर भी असफल रहती हैं । फिर भी वास्तविक विश्व समस्याएं हमारे समक्ष ऐसी प्रतिकूल हित प्रस्तुत करते हैं जिनका सामंजस्य नहीं किया जा सकता बल्कि समझौता किया जा सकता है ।[82] मनमानी गिरफ्तारी की मंजूरी और अतार्किक जमानत उपबंध का वही प्रभाव होगा जो 'क्लॉकवर्क ओरेंज' या 'एलीस इन वंडरलैंड' जैसी कल्पना के कार्य में विधि के संबंध में प्रतीत होता है जहां दंड अपराध से पहले ही प्राप्त हो जाता है और 'पुलिस राज्य' लागू करता है जो निरंकुशता पनपाता है ।[83] ऐसे उपायों का उपयोग बहुत सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए ।

4.11 क्योंकि भारत आई.सी.सी.पी.आर. का हस्ताक्षरकर्ता है, गिरफ्तारी और जमानत के उपबंध आई.सी.सी.पी.आर. के अनुच्छेद 9(3) और (4) की भा-ा और भाव को प्रकट करते हैं जिसमें यह उपबंध है कि विचारण पूर्व निरोध अपवादस्वरूप होना चाहिए और यह कि ऐसा किसी व्यक्ति जिसकी स्वतंत्रता गिरफ्तारी या निरोध के कारण कम की जाती है, उसके निरोध की वैधता का पुनर्विलोकन करने के लिए विलंबि रहित न्यायालय के समक्ष लाया जाना चाहिए और उसकी उन्मुक्ति का आदेश दिया जाना चाहिए, यदि ऐसा अपेक्षित हो । विधि के सिद्धांत और व्यवहार के बीच अंतराल को नियमों को लागू कर कम किया जाना चाहिए जो सामान्यतः नागरिकों की स्वतंत्रता को उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए, अधिक बढ़ाएंगे ।[84] इस कार्य को उचित रूप से पूरा नहीं किया जा सकता यदि हम यह मान लें कि 'विधि प्रवर्तन सिविल स्वतंत्रता के साथ हमेशा अद्भूत रहा है' ।[85]

ख. प्रतिप्रे-ण

4.12 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 56, 57, 167 और 309 प्रतिप्रे-ण की मंजूरी से संबंधित प्रक्रिया के बारे में है । न्यायिक और पुलिस अभिरक्षा के बीच अंतर न केवल अभिलक्षीय

---

[81] पॉल एच. रॉबिन्सन, "पनिशिंग डेन्गेंजरनेस ; क्लोकिंग प्रिवेंटिव डिटेंशन एज क्रिमन जस्टिस) संकाय छात्रवृत्ति 38 (2001).

[82] वही

[83] पूर्वोक्त टिप्पण 81, 1445 पर.

[84] एडवर्ड एल. बैरेट जूनि., " पुलिस पैक्टिस एंड द लॉ फार्म अरेस्ट टू रिलीज ऑर चार्ज" 50 सी.ए.एल. एल. समीक्षा 11(1962)

[85] ए बार्थ ए., द प्राइस ऑफ लिबर्टी, 19 (वाइकिंग प्रेस, 1961).

है बल्कि पुलिस अभिरक्षा के अधीन पुलिस द्वारा पूछताछ की अनुज्ञा दी जाती है जबकि न्यायिक अभिरक्षा के अधीन आपवादिक परिस्थितियों के सिवाय पूछताछ की अनुज्ञा नहीं दी जाती । विधि अपने नागरिकों की स्वतंत्रताओं का संरक्षक है और सामान्यतः निरोध की अनुज्ञा नहीं देता जब तक इसके लिए विधिक अनुशास्ति न हो ।[86] दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 56 वारंट के बिना गिरफ्तार करने वाले पुलिस अधिकारी से तत्काल मजिस्ट्रेट के समक्ष अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को पेश करने की अपेक्षा करती है जबकि धारा 57 पुलिस अधिकारी को 24 घंटे से अधिक अवधि के लिए गिरफ्तार व्यक्ति को निरुद्ध करने का प्रति-ेध करती है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 मजिस्ट्रेट के आदेशों पर 15 दिनों की अवधि के लिए पुलिस द्वारा व्यक्ति की अभिरक्षा का उपबंध करती है ।

4.13 निरुद्धकर्ता प्राधिकारी निरोध के लंबन के दौरान परिवर्तित हो सकता है बशर्ते कुल समयावधि 15 दिनों से अधिक न हो ।[87] 60-90 दिनों तक अभिरक्षा का विस्तार करने के लिए मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपवादिक परिस्थितियां विद्यमान हैं । प्रतिप्रे-ण का अनुरोध तभी किया जाना चाहिए जब अन्वे-ण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 57 के अधीन नियत 24 घंटों के भीतर पूरा न किया जा सकता हो और यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि प्रथमदृ-टया मामला बनता है या अभियोग सुआधारित है । मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अभिरक्षा मंजूर करने के तार्किक और विश्वसनीय आधार हैं ।[88] पुलिस को अभिरक्षा मंजूर करते समय मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करना चाहिए कि अभिरक्षा मंजूर करने से कुछ साक्ष्य पता लगाने में सहायता मिलेगी और ऐसी खोज के लिए अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति अपरिहार्य है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(ग) का स्प-टीकरण 1 ऐसे अभियुक्त को अभिरक्षा में बने रहने की अनुज्ञा देती है जबतक वह जमानत देने में समर्थ न हो । तथापि, **लक्ष्मी नारायण गुप्ता** बनाम **राज्य**[89] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जहां अभियुक्त व्यक्ति न्यायिक अभिरक्षा में है और गरीब है वहां उसकी जमानत मंजूर करने के लिए निदेश पारित किया जाए ।

4.14 उच्चतम न्यायालय ने निरोध के प्रति यांत्रिक बर्ताव पर उपहास किया और स्प-टतः यह कहा कि यदि लोक न्याय का संवर्धन किया जाना है तो यांत्रिक निरोध को हतोत्साहित किया जाए[90], फिर भी प्रतिप्रे-ण के लिए सामान्य दृ-टिकोण मानक बना रहता है । जमानत की सुनवाई तब होती है जब अपराध का अभियुक्त व्यक्ति जमानत आवेदन प्रस्तुत करता है । यदि

---

[86] राय, जनक राज, जमानत : लॉ एंड प्रोसेड्यूर्स, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, चौथा संस्करण, 2009, पैरा 175.

[87] बी. कुमार, '' लॉ ऑफ कस्टडी इन इंडिया : दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 का विश्ले-ण'' लॉओक्टोपस लॉ जर्नल (2014).

[88] राज पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1983 क्रि. ला. ज. 1009.

[89] 2002 क्रि. ला. ज. 2907

[90] बाबू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 527.

अभियुक्त के पास विधिक प्रतिनिधि नहीं है[91] या अधिवक्ता जमानत के लिए आवेदन प्रस्तुत नहीं करता तो व्यक्ति अभिरक्षा में बना रहता है और किसी कारण के बिना स्वतंत्रता से वंचित रहता है । इसी प्रकार मुचलका पश्चात्, न्यायालय एक समय पर 15 दिनों से अनधिक अवधि के लिए अभियुक्त को प्रतिप्रेन्ति करने की शक्ति रखता है ।[92] प्रसामान्यतः विचारण दैनन्दिन आधार पर होना चाहिए किंतु चूंकि ऐसा मामले बिरले होते हैं इसलिए न्यायालय सुनवाई की अगली तारीख को स्थगन और मुल्तवी मंजूर करते हैं और अभियुक्त व्यक्ति को इस बीच प्रतिप्रेन्ति करते हैं ।[93] धारा मुल्तवी या स्थगन के लिए न्यायालय से कारण अभिलिखित करने की अपेक्षा करती है । तथापि, ऐसे मामलों में जहां न्यायालय कारण अभिलिखित नहीं करता, वहां यह बनावटी और असावधानीपूर्वक है ।

4.15 संदिग्ध अपराध के लिए कारागार में व्यक्तियों के निरोध के लिए विधायी प्राधिकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 और 309(2) के अधीन उपबंधित है । तथापि, संहिता मुचलके के पूर्व और पश्चात् अभिरक्षा में निरोध के बीच स्प-ट अंतर करती है । पहला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन आता है और बाद वाला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 के अधीन ।[94] दोनों पारस्परिकतः अनन्य हैं । इन उपबंधों का न्यायिक स्प-टीकरण **दिनेश डालमिया** बनाम **सी. बी. आई.**[95] वाले मामले में मिल सकता है । **राज्य सी.बी.आई. के माध्यम से** बनाम **दाऊद इब्राहिम काशकर**[96] वाले मामले में न्यायालय ने आगे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 और 309 के अधीन प्रतिप्रे-ण की व्याप्ति और विस्तार पर यह स्प-ट किया ;

> ''यदि धारा 309(2) का निर्वचन किया जाना है तो इसका यह अभिप्राय है कि न्यायालय द्वारा किसी अपराध के संज्ञान लेने के पश्चात् यह संहिता की धारा 167 के अधीन पुलिस अभिरक्षा में निरोध की अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता, अन्वे-क अभिकरण आगे अन्वे-ण के दौरान गिरफ्तार व्यक्ति से पूछताछ करने के अवसर से वंचित हो जाएगा फिर भी वह पर्याप्त सामग्री के प्रस्तुत करने पर न्यायालय को यह विश्वास दिला सकता है कि उसका निरोध पुलिस अभिरक्षा में उस प्रयोजन के लिए आवश्यक था ।''

4.16 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 और 309 के अधीन प्रतिप्रे-ण की चर्चा **दिनेश डालमिया**[97] और **सी.बी.आई.** बनाम **राथीन दंडपथ**[98] वाले मामले में की गई थी । **दिनेश**

---

[91] जबकि प्रथमदृ-टया मजिस्ट्रेट को अभियुक्त को कानूनी सहायता देने की आवश्यकता है (मोहम्मद अजमल मोहम्मद अमीर कसाब उर्फ अबू मुजाहिद कसाब बनाम महारा-ट्र राज्य) अभ्यास के मामले में विधिक सहायता केवल मामले के संज्ञान के समय ही प्रदान की जाती है ।

[92] धारा 309 (2) परंतुक, भा. दं. प्र. सं.

[93] धारा 309(1) और (2) भा. दं. प्र. सं

[94] अरुण शोकीन, ट्रायल्स (http://documents.mx/documents/trials.html) (अंतिम बार 16 मई, 2016 को देखा गया)

[95] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 78.

[96] (2001) 10 एस. सी. सी. 438.

[97] पूर्वोक्त टिप्पण 95.

[98] ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3285.

डालमिया वाले मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय इस आधार पर मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रे-ण की इनकारी अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित नहीं है कि अभियुक्त व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 के अधीन अपनी गिरफ्तारी के पश्चात् अभिरक्षा में रहा । चूंकि गिरफ्तारी, प्रतिप्रे-ण और जमानत अन्वे-ण के महत्वपूर्ण भाग गठित करते हैं इसलिए अभियुक्त द्वारा जमानत के आवेदन का विनिश्चय अभियोजन को युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् स्थिर सिद्धांतों के आलोक में किया जाना चाहिए ।[99]

[99] महारा-ट्र न्यायिक अकादमी, " वि-नय पर न्यायिक अधिकारियों द्वारा लिखे गए पत्रों का सारांश : गिरफ्तारी से संबंधित कानून, रिमांड एंड बेल http://mja.gov.in/Site/Upload/GR/Summary%20of%20Criminal%20group.pdf (अंतिम बार 25 जनवरी, 2017 को देखा गया) पर उपलब्ध ।

अध्याय 5

जमानतीय और अजमानतीय अपराध

5.1 भारत के विधि आयोग ने अपने 78वीं रिपोर्ट[100] में यह उल्लेख किया कि जमानत पर विधि व्यापकतः निम्नलिखित मानकों (i) जमानतीय अधिकार, जमानत अधिकार स्वरूप है ; (ii) जमानत वैवेकिक है यदि अपराध अजमानतीय है ; (iii) जमानत मजिस्ट्रेट द्वारा मंजूर नहीं किया जाएगा यदि अभिकथित अपराध मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय है और (iv) सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालयों को जमानत मंजूर करने का वृहत्त विवेकाधिकार है जब अभिकथित अपराध ऐसा है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय है ।

क. जमानतीय अपराध

5.2 जमानतीय अपराध वि-नय धाराओं को संहिता के अन्य उपबंधों विशे-ाकर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 50, 56 और 57 के साथ सामंजस्यपूर्ण ढ़ंग से पढ़ा जाना चाहिए । जब साथ-साथ पढ़ते हैं तो वे निःसंदेह संविधान के अनुच्छेद 22 के संवैधानिक अधिदेश को प्रभावी बनाते हैं जिसमें गिरफ्तार व्यक्ति को अपराध की प्रकृति और उसकी गिरफ्तारी के आधार की सूचना पाने का अधिकार है ।[101] इसके अतिरिक्त जमानत मंजूर करने का विवेकाधिकार यंत्रवत नहीं है बल्कि प्रारंभिक जांच पर आधारित होना चाहिए । आगे, कथन के लेखबद्धकरण, अंगुलि छाप और फोटोग्राफ आदि के अभिलेखन जैसे अन्य प्रक्रियागत अपेक्षाओं के समापन तथा पूछताछ करने के लिए युक्तिसंगत अवधि न्यायोचित है ।[102] तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 गिरफ्तार व्यक्ति का प्रतिप्रे-ाण अभिप्राप्त करने के लिए जमानतीय अपराधों में उपलब्ध नहीं है ।[103]

5.3 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 आज्ञापक प्रकृति की है और न्यायालय या पुलिस को मामले में कोई विवेकाधिकार नहीं । जमानत उपलब्ध कराने की इच्छुक जमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किसी अभियुक्त व्यक्ति को छोड़ा जाना चाहिए ।[104] पुलिस के पास उपलब्ध एकमात्र विवेकाधिकार व्यक्तिगत बंध-पत्र या प्रतिभुओं के साथ अभियुक्त को छोड़ना है । ऐसे मामलों में जहां अभियुक्त जमानत उपलब्ध कराने में असमर्थ है, पुलिस अधिकारी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 57 के अधीन यथा विनिर्दि-ट गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त व्यक्ति को पेश करना चाहिए । तत्पश्चात् जब अपराध की अभियुक्त व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और वह जमानत देने का इच्छुक है तो मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति को छोड़ देगा और उपलब्ध एक मात्र विवेकाधिकार व्यक्तिगत बंध-पत्र या प्रतिभुओं के साथ बंध-पत्र छोड़ा जाना है । मजिस्ट्रेट अन्वे-ाण की सहायता करने के प्रयोजनों के लिए भी ऐसे व्यक्ति का निरोध प्राधिकृत नहीं कर सकता जो प्रतिभुओं सहित या रहित जमानत

---

[100] भारत के आठवें विधि आयोग द्वारा 78वीं रिपोर्ट, कारागार में विचाराधीन व्यक्तियों की भीड़भाड़, 1979.

[101] प्रवीण कुमार चंद्रकांत व्यास बनाम राज्य, 2001(3) जी.एल.आर. 2755.

[102] -वही-

[103] पूर्वोक्त टिप्पणी 101 और 96.

[104] संथ प्रकाश बनाम भगवान दास सहनी, 1969 एम.एल.डब्ल्यू. (क्रि.) 88.

देने का इच्छुक है । आगे, मजिस्ट्रेट अभिकथित अपराध के अन्वे-ण की प्रक्रिया में सहायता पहुंचाने के लिए पुलिस के समक्ष हाजिर होने के लिए इस प्रकार छोड़े गए व्यक्ति को मांग करने वाला आदेश जारी नहीं कर सकता ।

5.4 **रसिकलाल** बनाम **किशोर पुत्र खानचंद वाधवानी**[105] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जमानतीय अपराधों के लिए जमानत का अधिकार एक पूर्ण और अपरिहार्य अधिकार है और किसी स्वविवेक का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 के शब्द आदेशात्मक हैं और अपराध का अभियुक्त व्यक्ति यथाशीघ्र जमानत प्रस्तुत करने पर छोड़े जाने का पात्र है ।[106] आगे यह मत व्यक्त किया गया कि परिवादी या लोक अभियोजक को ऐसे मामलों में सुने जाने की आवश्यकता नहीं है जहां व्यक्ति जमानतीय अपराध से आरोपित हैं । तथापि, न्यायालय के पास प्रतिभूति मांगने के सिवाय कोई शर्त अधिरोपित करने का कोई विवेकाधिकार नहीं है ।[107] इस प्रकार पासपोर्ट अभ्यर्पित करने[108], पुलिस[109] या पुलिस आयुक्त[110] के समक्ष अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को हाजिर होने या ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को सार्वजनिक प्रदर्शन में भाग न लेने या कोई सार्वजनिक भा-ण देने[111] की कोई शर्त अधिरोपित नहीं की जा सकती ।

5.5 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 जिसके पढ़ने से स्प-ट होता है कि धारा अजामानतीय अपराध के उन अभियुक्तों से भिन्न सभी व्यक्तियों को लागू है । उदाहरणार्थ, जहां परिवाद प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट परिवाद की सत्यता सुनिश्चित करने के लिए किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में न कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के रूप में व्यक्ति का समन करता है और धारा 202 (पुरानी संहिता) के अधीन जांच कराने के लिए पुलिस को निर्देश देने पर, ऐसे व्यक्ति को जमानत देने का आदेश देता है वहां मजिस्ट्रेट को पुरानी संहिता की धारा 496 के अधीन अपनी शक्तियों के भीतर ही कार्य करने वाला कहा जा सकता है ।[112] पुरानी संहिता की धारा 496 के अधीन शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता की नई धारा 436 के समरूप हैं । यह धारा स्वयं धारा में यथाकथित धारा 116(3) और 446क के सिवाय दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 8 के अधीन कार्यवाहियों को लागू होती है । इस प्रकार, ऐसी प्रतिभूति कार्यवाहियों में जहां व्यक्ति के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस जारी की गई है वहां मजिस्ट्रेट को ऐसे व्यक्ति से अंतरिम प्रतिभूति मांगने की शक्ति है और उसे जांच लंबित रहने तक अंतिरम बंध-पत्र प्रस्तुत करना चाहिए ।[113] ऐसी प्रतिभूति कार्यवाहियों में ऐसी अंतरिम प्रतिभूति व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत नहीं की जाती है वहां

---

[105] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1341.

[106] -वही-

[107] पूर्वोक्त टिप्पण 64.

[108] अजीज बनाम केरल राज्य, 1984(2) क्रि. 413 (के.)

[109] मीर हासीम अली बनाम इम्पेरर, ए. आई. आर. 1918 बम्ब. 254.

[110] टी. एन. जयादीश देवीदास बनाम केरल राज्य, 1980 क्रि. एल. ज. 906.

[111] लोक अभियोजक बनाम रघुरामय (1957) 2 आंध्र. डब्ल्यू. आर. 383.

[112] वर्याम सिंह बनाम एम्पेरर, ए. आई. आर. 1923 लाहो. 663.

[113] पूर्वोक्त टिप्पण 54.

जमानत पर उसे छोड़ने का कोई प्रश्न नहीं होगा । उसे निरुद्ध रखा जाएगा जब वह बंध-पत्र प्रस्तुत करने में असफल रहता है । तथापि, जब व्यक्ति नोटिस प्राप्त होने पर हाजिर होता है और किसी अंतरिम बंध-पत्र की मांग नहीं की जाती है तो कोई जमानत बंध-पत्र प्रस्तुत की जाने की अपेक्षा नहीं है ।[114] इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 के उपबंध लागू नहीं होंगे । फिर भी जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी के अधीन लाया जाता है और पुलिस प्रतिभूति कार्यवाहियों के आरंभ का अनुरोध करती है तो निरुद्ध व्यक्ति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 के अधीन तब तक व्यक्तिगत बंध-पत्र या प्रतिभू के माध्यम से प्रतिभूति पर अविलंब छोड़ दिया जाएगा जब तक मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 116(3) के अधीन उससे अंतरिम बंध-पत्र की मांग नहीं करता ।[115] दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 की उपधारा (2) मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन छोड़े गए ऐसे अभियुक्त व्यक्ति की जमानत रद्द करने की मजिस्ट्रेट को शक्ति प्रदान करती है जो जमानत की किन्हीं शर्तों का उल्लंघन करता है । इस उपबंध के अलावा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालयों को अपराध के प्रकार को ध्यान दिए बिना अध्याय 33 के अधीन मंजूर किए गए किसी जमानत को रद्द करने की शक्ति प्रदान करती है यदि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति ने अपने आचरण द्वारा जमानत के माध्यम से दी गई छूट को समपहृत कर लिया है ।[116]

ख. व्यतिक्रम जमानत या कानूनी जमानत

5.6 इस उपबंध का उद्देश्य ऐसी विधायी चिंता को प्रकट करता है कि जब व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ हस्तक्षेप कर वारंट या न्यायालय आदेश के बिना गिरफ्तार किया जाता है तो अन्वे-ण का संचालन अतिशीघ्रता से किया जाना चाहिए ।[117] ऐसे व्यक्ति जो अपराध करने के लिए निरुद्ध किए गए हैं और अन्वे-णाधीन हैं, 90 दिनों के पश्चात् जहां अन्वे-ण मृत्यु, आजीवन कारावास या सात व-र्ा से अन्यून कारावास से दंडनीय अपराध के संबंध में है और 60 दिन जहां अन्वे-ण किसी अन्य अपराध से संबंधित हैं के पश्चात् संहिता की धारा 167(2) के अधीन कानूनी रूप से जमानत के पात्र हैं यदि अन्वे-ण अधिकारी इस अवधि के भीतर अपना अन्वे-ण पूरा करने और आरोप-पत्र फाइल करने में असफल रहता है ।

5.7 **सुरेश जैन** बनाम **महारा-ट्र राज्य**[118] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह स्प-ट किया कि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति जमानत शर्तों को पूरा करने पर जमानत दिए जाने का ''अलोप्य अधिकार'' अर्जित करता है यदि अन्वे-ण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन वर्णित अवधियों के भीतर पूरा नहीं होता है और मजिस्ट्रेट से अभियुक्त व्यक्ति को छोड़े जाने की आज्ञापक रूप से अपेक्षा है । विहित अवधि के परे कोई निरोध अवैध होगा । **संजय दत्त**

---

[114] -वही-

[115] पांडिचेरी पुलिस मैनुअल, '' शांति और अच्छे व्यवहार की देखभाल के लिए सुरक्षा'' (अध्याय XLIX).

[116] दयानिधी शेरांगी बनाम उड़ीसा राज्य, 1978 क्रि. ला. ज. (एन.ओ.सी.) 104.

[117] असलम बाबालाल देसाई बनाम महारा-ट्र राज्य, ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1.

[118] (2013) 3 एस. सी. सी. 77.

बनाम **राज्य, सी. बी. आई. के माध्यम से**[119] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत पर छोड़े जाने का अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को अलोप्य अधिकार तब लागू नहीं होगा यदि अभियुक्त व्यक्ति आरोप-पत्र फाइल किए जाने के पूर्व अधिकार का ''लाभ उठाने'' का आवेदन फाइल नहीं करता । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि आरोप-पत्र दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) में विनिर्दि-ट अवधि के पश्चात् किंतु जमानत आवेदन के विचार करने के पूर्व फाइल किया जाता है तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत का अधिकार उपलब्ध नहीं होगा और जमानत के आवेदन को गुणागुण के आधार पर ही विचार किया जाएगा ।[120] यद्यपि, अन्वे-ण पूरा करने में असफलता के लिए जमानत के अधिभोग का अधिकार अप्राप्य है, यह स्वतः नहीं है । अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को समुचित प्रक्रम पर अधिकार का लाभ उठाना चाहिए और चालान फाइल करने के पूर्व इसे प्रवृत्त करना चाहिए ।[121] आगे, ऐसा अभियुक्त व्यक्ति अपना जमानत प्रस्तुत करने तक अभिरक्षा में बना रहता है ।

5.8 दैनिक आधार पर यह अभिलिखित किया गया है कि यदि जमानत मंजूर करने के बावजूद अपराध के अभियुक्त व्यक्ति प्रतिभूति देने में समर्थ नहीं है तो जमानत आदेश अप्रवर्तनशील बना रहता है । ऐसे मामलों में यदि अभियुक्त व्यक्ति अपनी दरिद्रता के कारण प्रतिभूति देने में असमर्थ रहता है और जमानत के निबंधनों में परिवर्तन करने के लिए आवेदन देता है तो न्यायालय इस पर विचार कर सकेगा और अभियोजक को सम्यक् नोटिस देने के पश्चात् समुचित आदेश पारित कर सकेगा ।

ग. अजमानतीय अपराध

5.9 जमानत अजमानतीय अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए अधिकार स्वरूप नहीं है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 मजिस्ट्रेट को निर्बंधनों के अधीन रहते हुए अजमानतीय मामलों में जमानत देने की शक्तियों को सूचीबद्ध करती है । इसमें यह उपबंध है कि मजिस्ट्रेट के पास कतिपय निर्बंधनों के अधीन रहते हुए जमानत पर ऐसे व्यक्तियों को छोड़ने का विवेकाधिकार है । तथापि, ऐसे कतिपय मामलों में जहां अपराध की प्रकृति और गंभीरता महत्वपूर्ण है, विचारण पूर्व निरोध नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत जो विधिशास्त्र के आधारभूत लक्षण के रूप में लोगों की परंपरा और आत्मा में इस प्रकार समाहित है, का उल्लंघन नहीं करता ।[122]

5.10 **राव हरनारायण सिंह शिवजी सिंह** बनाम **राज्य**[123] वाला मामला जमानत मंजूर करने या इनकार करने के अवधारण के लिए उपयोग किए जाने वाले मानकों पर पूर्व टिप्पणी का

---

[119] (1994) 5 एस. सी. सी. 410.

[120] -वहीं; प्रज्ञा सिंह ठाकुर बनाम महारा-ट्र राज्य, (2011) 10 एस. सी. सी. 445 देखें ।

[121] पूर्वोक्त टिप्पण 119.

[122] संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम सालेर्नो, 481 यू.एस. 739 (1987).

[123] ए. आई. आर. 1958 पी. एंड एच 123 ; निंगंग इबॉटन सिंह बनाम केंद्र शासित प्रदेश मणिपुर, ए. आई. आर. 1969 मणि. 6.

उपबंध करता है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क के निर्बंधनों के अधीन रहते हुए, मजिस्ट्रेट को विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिकतः करना चाहिए । न्यायालय ने जमानत पर विनिश्चय करते समय निम्नलिखित अविस्तारी किंतु सुसंगत कारकों को सूचीबद्ध किया; (1) आरोप की गंभीरता (2) अभियोग की प्रकृति (3) दंड की गंभीरता जो दो-ासिद्धि पर दी जाएगी ; (4) अभियोग के समर्थन में साक्ष्य की प्रकृति (5) आवेदक के फरार होने का खतरा यदि उसे जमानत पर छोड़ा जाए (6) साक्षियों के साथ छेड़छाड़ किए जाने का खतरा (7) विचारण के समयवृद्धि की प्रकृति (8) अपना बचाव की तैयारी करने का आवेदक को अवसर और अपने काउंसेल तक पहुंच और (9) अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का स्वास्थ्य, आयु और लिंग ।

5.11 जमानत मंजूर करने या इनकार करने क वि-नय में न्यायालय द्वारा शक्ति का प्रयोग एक न्यायिक कार्य है न कि अनुसचिवीय कार्य ।[124] **गुडीकांति नरसिंहलु**[125] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि लोक न्याय संपूर्ण जमानत विधि का केंद्रक है और जमानत पर विकसित विधिशास्त्र सामाजिकतः गठित न्यायिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है जिसमें विधियों द्वारा मार्गदर्शित ठोस न्यायिक विवेकाधिकार की विशे-ा भूमिका है । ऐसा न्यायिक स्वविवेक विधि द्वारा शासित होना चाहिए न कि मनमौजेपन द्वारा और यह मनमाना, अस्प-ट और काल्पनिक नहीं हो सकता है ।

5.12 **राज्य** बनाम **कैप्टन जगजीत सिंह**[126] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने ऐसे सुसंगत कारकों का वर्णन किया जो अपराध की प्रकृति और गंभीरता, साक्ष्य का चरित्र, ऐसी परिस्थितियां जो अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए विशि-ट हैं, विचारण पर सुरक्षित न होने पर अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति युक्तियुक्त संभाव्यता, साक्षियों से छेड़छाड़ किए जाने की युक्तियुक्त आशंका, आम जनता या राज्य आदि का व्यापक हित जो तब उत्पन्न होता है जब न्यायालय अजमानतीय अपराध के लिए जमानत का विनिश्चय करता है जैसे वि-नय जमानत के विनिश्चय को प्रभावित करते हैं । आगे, **गुरुचरण सिंह** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[127] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने **जगजीत सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले की मताभिव्यक्तियों को दोहराया और यह अभिनिर्धारित किया कि जमानत मंजूर करते समय ऐसे अभिभावी विचार जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(1) और 439(1) दोनों मामलों में एक समान हैं जो इस प्रकार है : ऐसी परिस्थितियों की प्रकृति और गंभीरता जिसमें अपराध किया गया है, पीड़ित और साक्षियों के प्रतिनिर्देश से अभियुक्त व्यक्ति की अवस्थिति और हैसियत ; न्याय से भागने की अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की संभावना ; अपराध की पुनरावृत्ति की संभावना ; अपने निजी प्रणा को जोखिम में डालने की संभावना ; साक्षियों से छेड़छाड़ करने की संभावना ; मामले का इतिहास और इसका अन्वे-ाण आदि जिसे व्यापक रूप से उपबंध नहीं किया जा सकता ।

---

[124] गोविंद प्रसाद बनाम राज्य, 1975 क्रि. ला. ज. 1249 (कल.)

[125] पूर्वोक्त टिप्पण 30.

[126] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 253.

[127] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 179.

5.13 **राजेश रंजन** उर्फ **पप्पु यादव** बनाम **केंद्रीय अन्वे-ण ब्यूरो**[128] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि जमानत की मंजूरी मामले के तथ्यात्मक पहलुओं पर निर्भर है और जमानत की मंजूरी के लिए कोई नियमनि-ठ फार्मूला अधिकथित नहीं किया जा सकता । तथापि, **राजस्थान राज्य** बनाम **बालचंद**[129] वाले मामले में यह था कि उच्चतम न्यायालय ने अपनी सूत्रबद्ध राय में यह घोनित किया कि नियम ''जमानत न कि जेल'' है । उसने आगे यह कहा कि जमानत से इनकार एक अपवाद है और इसका तभी प्रयोग किया जाना चाहिए जब ऐसे याची द्वारा जो जमानत पर छोड़े जाने की ईप्सा करता है, से न्याय से फरार होने के या न्याय के अनुक्रम को धमकाने या बारंबार अपराध के रूप में अन्य संकट पैदा करने या साक्षियों और इसी तरह को भयत्रास करने का संकेत करने वाली परिस्थितियां हैं । **गुडीकांति नरसिंहलु** (पूर्वोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने अभियोजन साक्षियों से या अन्यथा से छेड़छाड़ करने के आवेदन की संभावना या न्याय प्रक्रिया को प्रदूनित करने की संभावना पर विचार करना आवश्यक समझा । ऐसा व्यक्ति जो जमानत चाहता है, के पूर्ववृत्त और आपराधिक अभिलेख, विशे-कर ऐसा कोई अभिलेख जो यह इंगित करता हो कि उसके द्वारा जमानत के दौरान गंभीर अपराध किए जाने की संभावना है, की जांच करना परंपरागत और तार्किक है । **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **अमरमणि त्रिपाठी**[130] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि अस्प-ट अभिकथन कि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति साक्ष्य या साक्षियों से छेड़छाड़ करेगा, जमानत से इनकार करने का आधार नहीं हो सकता यदि अभियुक्त व्यक्ति का ऐसा चरित्र है कि मात्र उसकी उपस्थिति साक्षियों को भयग्रस्त करेगी या यदि यह साबित करने का साक्ष्य है कि स्वतंत्रता का उपयोग न्याय को विकृत करने या साक्ष्य से छेड़छाड़ करने के लिए किया जाएगा तो जमानत से इनकार किया जाएगा । आगे, **कल्याण चंद सरकार** बनाम **राजेश रंजन** उर्फ **पप्पू यादव**[131] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने जमानत विनिश्चय में विवेकाधिकार के प्रयोग में विचार किए जाने वाले सुसंगत कारकों का पुनः उल्लेख किया । उसने न्यायालयों को ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिक ढ़ंग से न कि सामान्य अनुक्रम में करने की चेतावनी दी ।

5.14 यद्यपि **पप्पू यादव** (पूर्वोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने जमानत मंजूर करने के लिए अपने विनिश्चय को न्यायोचित ठहराना आज्ञापक बनाया है । तथापि, उसने जमानत की खारिजी के लिए ऐसी किसी कोई अपेक्षा नहीं की है । आयोग यह विश्वास करता है कि औचित्य को जमानत इनकार करने के लिए भी आज्ञापक बनाया जाए क्योंकि यह स्वतंत्रता की हानि पहुंचाता है । जमानत मंजूर करते समय विवेकाधिकार के प्रयोग में मजिस्ट्रेट यह समाधान करने के लिए अभियोजन को बुला सकता है कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध वास्तविक मामला है और अंत में ऐसे आरोप के समर्थन में प्रथमदृ-ट्या साक्ष्य पेश करे । यह परम दो-ा या निर्दोनिता के बजाए प्रतिवादी के विरुद्ध मामले को मजबूत करने को निर्दि-ट करता

---

[128] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 451 ; पूर्वोक्त टिप्पण 64.

[129] ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 2447 राज्य बनाम अनील शर्मा ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 3806 देखें.

[130] (2005) 8 एस.सी.सी. 21.

[131] ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 921.

है ।[132] संहिता की धारा 437 का चौथा परंतुक लोक अभियोजक से परामर्श करने की अनुज्ञा देता है जब अपराध सात व-र्ा या अधिक से दंडनीय हो । ऐसे प्रक्रम पर अभियोजन की सभी युक्तियुक्त संदेह से परे अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का दो-ा स्थापित करने के लिए साक्ष्य देने की बाध्यता नहीं है ।[133] दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(1)(i) में यह उपबंध है कि ऐसा कोई अभियुक्त व्यक्ति जो संज्ञेय और अजमानतीय अपराध के करने का संदिग्ध है, को जमानत पर नहीं छोड़ा जाएगा यदि ऐसा व्यक्ति मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध या सात व-र्ा या अधिक के कारावास से दंडनीय अपराधों का दो-ासिद्ध आधार है या तीन या अधिक में से दो बार किंतु सात व-र्ाों से अन्यून के लिए पूर्व दो-ासिद्ध रहा है । विधि आयोग की ध्यान में यह आया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के उपधारा (1) के खंड (ii) में अनजाने में गलती हो गई है, जहां यह उल्लेख है कि, ''..... तीन व-र्ा की अवधि से अधिक के किंतु सात व-र्ा से अनधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय किसी संज्ञेय अपराध'' (बल दिया गया) में ''अनधिक'' उपबंध की स्कीम के अनुरुप नहीं है । इस प्रकार, अनधिक शब्द को हटाने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 में तत्समानी संशोधन की सिफारिश की जाती है ।

5.15 तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(1) के दूसरे परंतुक में यह उल्लेख है कि यदि न्यायालय का समाधान है कि ऐसे मामलों में जमानत मंजूर करना ठीक और उचित है तो जमानत किसी अन्य विशे-ा कारण से मंजूर किया जा सकेगा । सामान्यतः जब आजीवन कारावास या मृत्यु से दंडनीय अपराध के किसी अभियुक्त व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष लाया जाता है तो जमानत से इनकार किया जाना चाहिए । केवल तब मजिस्ट्रेट युक्तियुक्त आधारों पर जमानत भंग कर सकेगा कि अभियुक्त व्यक्ति ऐसे अपराध का दो-ाी नहीं है, आपवादिक परिस्थितियों में जमानत मंजूर की जा सकती है । गिरफ्तारी प्रायः विश्वासोपादक और अकाट्य सामग्री के आधार पर की जाती है जो ठोस और गंभीर आरोप के अभियोग को प्रेरित करती है । अतः जब अभियुक्त को ऐसे अपराध से आरोपित किया जाता है जिसके लिए गंभीर दंड हैं तो आपराधिक कारणों के अभाव में अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को निरुद्ध करने का व्यवहार होना चाहिए । फिर भी यह पाया जा सकता है कि अभियुक्त व्यक्ति को यह साबित करना चाहिए कि उसका निरोध आपवादिक परिस्थितियों में कैसे अनुचित होगा (आपवादिक परिस्थितियों का उल्लेख ऐसी परिस्थितियों के अदभुत संयोजन के रूप में किया जाए जो असाधान हो) ।[134] **बाबू सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[135] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' वंचित होती है जब जमानत से इनकार किया जाता है और यह स्वतंत्रता अनुच्छेद 21 के अधीन मान्यता प्राप्त हमारी संवैधानिक प्रणाली का एक बहुमूल्य भाग है कि इसे इनकार करने की कार्यालयीय शक्ति प्रयोक्तव्य महत्वपूर्ण आस्था है । किसी अभियुक्त या दो-ासिद्ध की व्यक्तिगत स्वतंत्रता विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के निबंधनों में विधिसम्मत ग्रहण से

---

[132] अरियाना लिंडमैयर,'' दाहिना हाथ क्या देता है ; जमानत पर राज्य संवैधानिक अधिकार का निर्वचन'' 78 फोर्डहाम एल. रिव्यू. 267 (2009).

[133] 36 क्रि. ला. ज. 711.

[134] 18 यू. एस. सी. सी. एस. 3145 (सी) ; संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम दी सोम्मो, 951 एफ. 2डी 494, 497 (2डी. क्रि. 1991).

[135] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 527.

ग्रस्त होने पर ही स्वीकार्य है । पुलिस शक्ति का सिद्धांत, संवैधानिकतः लोक व्यवस्था, राज्य की सुरक्षा, रा-ट्रीय एकता और सामान्यतः लोकहित के अनुरक्षण की दंडात्मक प्रक्रियाओं को विधिमान्य ठहराता है ।

5.16 विधि न्यायालयों को ''कोई अन्य शर्त जो हाजिरी सुनिश्चित करने और समुदाय को संरक्षित करने के लिए युक्तियुक्ततः आवश्यक है'' अधिरोपित करने की भी शक्ति प्रदान करती है ।[136] न्यायालयों के लिए न्यूनतम निर्बंधित शर्त या उसका संयोजन अधिरोपित करना तर्कसंगत है जो युक्तियुक्ततः यथापेक्षित व्यक्ति की हाजिरी और किसी अन्य व्यक्ति और आम समुदाय की सुरक्षा सुनिश्चित करना सुनिश्चित करेगा ।[137] दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(3) के अनुसार जब कोई व्यक्ति सात व-र्ा या अधिक से दंडनीय भारतीय दंड संहिता के अध्याय 6, 16 या 17 के अधीन अपराध करने का संदिग्ध व्यक्ति है तो न्यायालय इस प्रकार, अपराध के ऐसे अभियुक्त व्यक्ति पर शर्तें अधिरोपित कर सकता है :

- यह कि ऐसा व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 33 के अधीन नि-पादित बंधपत्र की शर्तों के अनुसार हाजिर होगा ;
- यह कि ऐसा व्यक्ति उस अपराध जैसा जिसको करने का उस पर अभियोग या संदेह है, कोई अपराध नहीं करेगा ;
- यह कि ऐसा व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उसके कोई उत्प्रेड़णा, धमकी या वचन नहीं देगा या साक्ष्य को नहीं बिगाड़ेगा ।

5.17 उपरोक्त शर्तों के अलावा, न्यायालय कोई अन्य शर्त अधिरोपित कर सकेगा जो वह न्यायहित में आवश्यक हो । कुछ मामलों में यह दर्शित करने पर समुदाय को जोखिम या खतरा या खतरे के कारण प्रतिवादी को निरुद्ध किया जा सकेगा कि उसके द्वारा शारीरिक हिंसा या ऐसा कार्य जो न्याय के हित के लिए हानिकर है, किए जाने की संभावना है । तथापि, निरोध को प्राधिकृत करने के लिए न्यायालय को पता लगाना चाहिए कि कोई शर्त युक्तियुक्ततः किसी अन्य या समुदाय की सुरक्षा को सुनिश्चित नहीं करेगी और यह स्प-ट और विश्वासोत्पादक साक्ष्य द्वारा समर्थित होना चाहिए ।

5.18 उन्मुक्ति शर्तें हाजिरी और सुरक्षा सुनिश्चित करने के प्रयोजन के सुसंगत होनी चाहिए ।[138] यूनाइटेड स्टेट में, ऐसी शर्तें जो न्यायालय अधिरोपित करते हैं, में ओ-धि परीक्षण,

---

[136] संयुक्त राज्य अमेरिका जमानत विधि 3142(सी)(1)(बी).

[137] 3142(सी)(1)(बी) डी. एन. अदैर, द बेल रिफार्म एक्ट, 1984 (परिसंघीय न्यायिक केंद्र, 2006).

[138] संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम गोजेंस 84 एफ. 3डी. 697, 702 (चौथी क्रि. 1996) ; संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम वर्गास 925 एफ. 2डी. 1260, 1265 (10वें क्रि. 1991) ; संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम फ्रांसीसी, 900 एफ. 2डी. 1300, 1302 (8वें क्रि. 1990) ; संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम ब्राउन, 870 एफ. 2डी. 1354, 1358 एन. 5 (7वें क्रि. 1989) ; संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम रोज, 791 एफ. 2डी. 1477, 1480 (11वें क्रि. 1986) ; संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम फ्रैजियर, 772 एफ. 2डी. 1451, 1452-53 (9वें क्रि. 1985) (पर क्यूरीम)

गृह गिरफ्तारी, वारंटहीन तलाशी को प्रस्तुत[139], टेलीफोन मानीटरिंग, घर के बीचोबीच निवास, इलेक्ट्रानिक ब्रेसलेट मानीटरिंग, प्रतिवादी की आस्ति का हिमीकरण[140] इंटरनेट और कम्प्यूटर की सीमित पहुंच[141] और विचारणपूर्व सेवा अधिकारियों द्वारा औचक अघोनित दौरों पर पेश होना सम्मिलित हैं । तथापि, न्यायालय ऐसी वित्तीय शर्त अधिरोपित करने से प्रतिनिद्ध हैं जिनका परिणाम व्यक्ति का विचारण पूर्व निरोध है ।[142] जमानत को आंकड़ों पर सेट नहीं किया जा सकता जो प्रतिवादी आसानी से भेज सकें किंतु न्यायालय जमानत पर अपहुंच मानक प्रस्तुत कर प्रतिवादी को साशय निरुद्ध नहीं कर सकते । वे जमानत का एक स्तर नियत कर सकते हैं जो वे हाजिरी सुनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्ततः ठीक समझें । आगे यदि प्रतिवादी वह रकम अदा नहीं कर सकता तो प्रतिवादी को इसलिए नहीं निरुद्ध किया जा सकता क्योंकि वह ''धन नहीं इकट्ठा कर सकता क्योंकि धन के बिना भाग जाने का जोखिम इतना अधिक नहीं है'' ।[143]

5.19 भारत में जमानत के वर्तमान व्यवहार से यह साबित होता है कि विचारणपूर्व निरोध प्रतिवादी की स्वतंत्रता और हित के महत्व को कम नहीं करता । उचित जांच यह है कि क्या ये व्यवहार दंड गठित करते हैं ।[144] जमानत का प्राथमिक उद्देश्य विचारण के लिए अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की हाजिरी अभिप्राप्त करना है । तथापि, कई न्यायालय जमानत के समायोजन या इनकार के अधिकार को आरक्षित रखते हैं यदि यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त व्यक्ति सार्वजनिक सुरक्षा या न्यायिक प्रक्रिया के हित या गरिमा को खतरा पहुंचाएगा । अतः यदि न्यायालय कुल मिलाकर जमानत से इनकार करता है तो निरोध सिविल न कि दांडिक होगा क्योंकि यह भवि-यपेक्षी और निवारक है ।[145]

---

[139] संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम किल्स इनमी 3 एफ. 3डी. 1201, 1203 (आठवां प्रचालन, 1993) डिनाइड, 510 यू.एस. 1138 (1994) (वारंट रहित तलाशी शर्त के अनुसरण में विधिमान्य दंडादेश की प्रतीक्षा कर रहे प्रतिवादी की तलाशी) ; अग्रनीत, यूनाइटेड स्टेट बनाम स्कॉट, 450 एफ. सी. डी. 163 (9वां प्ररिचालन, 2006) (वारंट रहित तलाशी शर्त के अनुसरण में ओ-नधि परीक्षण की पुन्टि संभाव्य कारण से होनी चाहिए यद्यपि न्यायालय ने यह सतर्क किया है कि वह ओ-नधि परीक्षण जमानत शर्त पर स्प-ट प्रति-ेध स्थापित नहीं करना चाहता) ।

[140] संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम वेल्सेंड, 993 एफ. 2डी 1366 (8वां क्रि. 1993).

[141] संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम जॉनसन, 446 एफ.3डी. 272 (2डी. क्रि. 2006) (कंप्यूटर उपयोग निर्बंधित करते हुए पर्यवेक्षित उन्मुक्ति शर्त कायम रखना) ।

[142] 3142(सी)(2).

[143] संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम जेस्सप, 757 एफ. 2डी. 378, 388-89 (1 क्रि. 1985) सामान्यत देखें ; अडायर, डी.एन. और फेडरल जुडिशियल सेंटर, (2006). 1994 का जमानत सुधार अधिनियम, वाशिंगटन डी.सी., फेडरल जुडिशियल सेंटर ।

[144] पूर्वोक्त टिप्पण 24 (यह अवधारित करना कि क्या स्वतंत्रता पर निर्बंधन अननुज्ञेय दंड या अनुज्ञेय विनियम गठित करता है, हमें सर्वप्रथम विधायी आशय पर ध्यान देना चाहिए....हम यह नि-कर्-ा निकालते हैं कि अधिनियम द्वारा अधिरोपित निरोध द्विभाजन के विनियामक पक्ष की ओर आता है) ।

[145] -वही- बेल्ल बनाम वोल्फीश, 441 यू. एस., 520, 536-37 (1979) ; एल. ओ. डब्ल्यू. बनाम जिला न्यायालय अरापाहोए, 623 पी. 2डी 1253, 1256 (कोलो. 1981) देखें पूर्वोक्त टिप्पण 27.

अध्याय 6

अग्रिम जमानत

6.1 ''अग्रिम जमानत'' पद को भी दंड प्रक्रिया संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है । तथापि, उच्चतम न्यायालय ने **बालचंद जैन** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[146] वाले मामले में अग्रिम जमानत को 'गिरफ्तारी की आशंका में जमानत' के रूप में अभिप्रेत किया है । पद एक अपनाम है क्योंकि यह निरर्थकता का प्रतिनिधित्व करता है कि जमानत गिरफ्तारी की आशंका में न्यायालय द्वारा मंजू किया जा सकता है । जब सक्षम न्यायालय ''अग्रिम जमानत'' मंजूर करता है तो यह ऐसा आदेश जारी करता है कि गिरफ्तारी की दशा में व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाए । उच्चतम न्यायालय ने **सीधाराम सत्यलिंगप्पा मेहत्रे** बनाम **महारा-ट्र राज्य**[147] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि जमानत विधि दो परस्पर प्रतिकूल हितों में सामंजस्य स्थापित करती है अर्थात् अपराध करने वाले और दोहराने वालों के जोखिम से समाज को संरक्षित करने की बाध्यता और दूसरी ओर आपराधिक विधिशास्त्र-निर्दोषिता की उपधारणा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गरिमा के मूल सिद्धांत का आत्यंतिक पालन ।

6.2 उच्चतम न्यायालय ने यह बल दिया कि अग्रिम जमानत व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सुरक्षित करने की एक युक्ति है और यह न तो अपराध करने का पासपोर्ट है और न ही संभवतः या असंभवतः किसी या सभी प्रकार के अभियोगों के प्रति परित्राण । अग्रिम जमानत के उपबंध को लागू करने के इतिहास और उद्देश्य का पता **बालचंद जैन** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[148] और **गुरबक्श सिंह सिबिया** बनाम **पंजाब राज्य**[149] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णय से लगाया जा सकता । **गुरबक्श सिंह सिबिया** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 429 उन लोगों को संरक्षित करने के लिए विहित किया गया जिन्हें अपने विरोधियों द्वारा झूठे मामलों में उन्हें अपमानित करने के प्रयोजन या कारागार में उन्हें निरुद्ध कर अन्य प्रयोजनों के लिए फंसाया जाता है ।[150]

6.3 विधि आयोग की 48वीं रिपोर्ट[151] ने यह चेतावनी दी कि अग्रिम जमानत की शक्ति ऐसी शक्ति है जिसका प्रयोग 'बहुत आपवादिक मामलों' में ही किया जाना चाहिए । यद्यपि विधायिका ने अपनी प्रज्ञा से व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निर्दोषिता की उपधारणा के संरक्षण के लिए उत्सुक है,[152] फिर भी, इसके कारण उपबंध का काफी दुरुपयोग हुआ है । इस प्रकार इसने आगे यह सिफारिश की कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि बेईमान याचियों के अनुरोध

---

[146] पूर्वोक्त टिप्पण 129.

[147] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 312.

[148] पूर्वोक्त टिप्पण 129.

[149] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1632.

[150] भारत का विधि आयोग, ''भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता पर 45वीं रिपोर्ट, 1898'' वॉल्म. 1 (1969) पैरा 39.9 पर.

[151] भारत का विधि आयोग की 48वीं रिपोर्ट, भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक, 1970 के अंतर्गत कोई प्रश्न।

[152] पूर्वोक्त टिप्पण 29.

पर उपबंध का दुरुपयोग न किया जाए, अंतिम आदेश लोक अभियोजक को नोटिस देने के पश्चात् ही दिया जाना चाहिए । आरंभिक आदेश को केवल अंतरिम बनाया जाए । यह भी सुझाव दिया गया कि अभिलिखित कारणों पर ही निदेश जारी किया जाए यदि न्यायालय का यह समाधान होता है कि ऐसा निदेश न्यायहित में आवश्यक है ।

6.4 उच्चतम न्यायालय ने **बालचंद**[153] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 एक असाधारण उपचार है और विशे-न या आपवादिक मामले में ही अपनाया जाना चाहिए । तथापि, **गुरबक्श सिंह सिबिया**[154] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने आगे यह स्प-ट किया कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 असाधारण प्रकृति की है इसलिए ऐसी शक्ति का सहारा बुद्धिमत्तापूर्ण सतर्कता के साथ किया जाए और न्यायिक शक्ति का बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोग असंजमित दुरुपयोग के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का संरक्षण करता है ।

6.5 इस प्रकार, **बालचंद जैन**[155] वाले मामले के विनिश्चय में जहां यह मत व्यक्त किया गया कि अग्रिम जमानत मंजूर करने की शक्ति असाधारण प्रकृति की है और आपवादिक मामलों में ही जहां यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति को छूठा फंसाया गया है या उसके विरुद्ध निरर्थक मामले थोपे जा सकते हैं या यह अभिनिर्धारित करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के फरार होने की संभावना नहीं है या अन्यथा जमानत पर अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए । न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 में वर्णित शब्दों के अलावा अग्रिम जमानत अभिप्राप्त करने के लिए याची द्वारा विशे-न मामला बनाया जाना चाहिए । जहां बाद में उच्चतम न्यायालय ने **गुरबक्श सिंह**[156] वाले मामले के मत को अपनाया वहीं विभिन्न उच्च न्यायालयों ने **बालचंद जैन**[157] वाले मामले के मत का अब भी अवलंब लेते हैं । यह स्मरणीय रहे कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का भाग गठित नहीं करती और यह उच्च न्यायालयों और सेशन न्यायालयों को समुचित मामलों में विवेकाधिकार शक्ति प्रदान करती है ।[158]

6.6 **सुमीत मेहता** बनाम **रा-ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली**[159] वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि व्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा पुलिस द्वारा अन्वे-ण के कर्तव्य के बीच संतुलन होना चाहिए । इस प्रकार, अबाधित अन्वे-ण सुनिश्चित

---

[153] पूर्वोक्त टिप्पण 129.
[154] पूर्वोक्त टिप्पण 149.
[155] पूर्वोक्त टिप्पण 129.
[156] पूर्वोक्त टिप्पण 149.
[157] शिवनंदन मंडल बनाम बिहार राज्य, 1980 बी.एल.जे. 258 ; शंकरनारायणन बनाम पुलिस सहायक निरीक्षक । 1983 एम.एल.जे. (क्रि.) 13 ; टी. नदार बनाम राज्य 1982 एल.एल.जे. (क्रि.) 250.
[158] मध्य प्रदेश राज्य बनाम राम कृ-णा बलोथिया, ए. आई. आर. 1995 एस.सी. 1198.
[159] (2013) 15 एस. सी.सी. 570.

करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438(2) के अधीन कोई समुचित शर्त अधिरोपित की जा सकती है । जहां तक व्यक्ति का न्याय के अनुक्रम को बाधित करने की संभाव्यता को दूर करने के लिए आवश्यक है वहीं शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं । **गुरबक्श सिंह सिबिया**[160] वाले मामले में न्यायालय ने यह पता लगाया कि क्या आजीवन कारावास या मृत्यु से दंडनीय अपराधों के संबंध में अग्रिम जमानत मंजूर की जाए । उसने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यदि आशय यह हो कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(2) के अधीन अपवाद दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन अनुतो-न को शासित करने वाले हों तो उस आशय का व्यक्त उपबंध होना चाहिए ।

6.7 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का उपयोग यंत्रवत नहीं किया जाना चाहिए और अग्रिम जमानत की मंजूरी अनुरोध पर प्रत्येक मामले में किया जाना चाहिए । अग्रिम जमानत मंजूर करने के विवेकाधिकार को बिल्कुल अबाधित और स्वच्छंद नहीं कहा जा सकता । इसके अतिरिक्त, न्यायिक पूर्व निर्णय अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए न्यायालयों में निहित विवेकाधिकार का मार्गदर्शन या परिसीमा का उपबंध कर सकते हैं ।[161] **पोकर राम** बनाम **राजस्थान राज्य**[162] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने सचेत किया कि चूंकि अग्रिम जमानत अपराध के अन्वे-ण के क्षेत्र में प्रवेश करती है इसलिए गंभीर अपराधों में अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए कुछ बहुत बाध्यकारी परिस्थितियों का होना आवश्यक है ।

6.8 उच्चतम न्यायालय ने अग्रिम जमानत पर विचार करते समय निम्नलिखित कारकों और मापदंडों पर विचार किए जाने की सिफारिश की :

i. गिरफ्तारी करने के पूर्व अभियोग की प्रकृति और गंभीरता और अभियुक्त की सही भूमिका को उचित रूप से समझना चाहिए ;ञ

ii. इस तथ्य के सहित कि क्या अभियुक्त को किसी संज्ञेय अपराध की बाबत न्यायालय द्वारा दो-नसिद्धि पर पहले कारावसित किया गया है, आवेदक के पूर्व वृत्त ;

iii. आवेदक की न्याय से भागने की संभावना ;

iv. अभियुक्त की समान या अन्य अपराधों को दोहराने की संभावना ;

v. क्या अभियोग गिरफ्तारी द्वारा आवेदक को क्षतिग्रस्त करने या अपमानित करने के उद्देश्य से ही लगाए गए हैं ;

vi. विशे-नकर काफी लोगों को प्रभावित करने के व्यापक महत्व वाले मामले में अग्रिम जमानत की मंजूरी ;

---

[160] पूर्वोक्त टिप्पण 149.

[161] सुरेश चंद बनाम राजस्थान राज्य 1985 क्रि. ला. जे. 1750 (राज.).

[162] ए. आई. आर. 1985 एस.सी. 969.

vii. न्यायालयों को अभियुक्त के विरुद्ध उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का मूल्यांकन बहुत सतर्कतापूर्वक करना चाहिए । न्यायालय को मामले में अभियुक्त की सही भूमिका को भी स्प-टतः समझना चाहिए । ऐसे मामले जिसमें अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 और 149 की सहायता से फंसाया गया है, न्यायालय को अधिक सावधानी और सतर्कता के साथ विचार करना चाहिए क्योंकि ऐसे मामलों में अतिरिक्त फंसाव आम जानकारी और चिंता का वि-नय है ।

viii. अग्रिम जमानत की मंजूर के आवेदन पर विचार करते हुए, दो कारकों अर्थात् स्वतंत्र नि-पक्ष और पूर्ण अन्वे-ण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और दूसरी ओर अभियुक्त को तंग करने, अपमानित करने और अन्यायोचित निरोध से बचा जाए, के बीच संतुलन बनाए रखा जाए ;

ix. न्यायालय को साक्षी से छेड़छाड़ की आशंका या परिवादी को धमकी की आशंका पर विचार करना चाहिए ; और

x. अभियोजन के गैर गंभीर बातों अर्थात् मामले की असलियत के तत्व पर, हमेशा विचार किया जाना चाहिए । अभियोजन की असलियत के बारे में कुछ संदेह होने की दशा में, अभियुक्त को जमानत के आदेश का हकदार समझा जाना चाहिए ।

6.9 अग्रिम जमानत की अवधि के बारे में विचार करने के प्रश्न पर, इस बिंदु पर विधि काफी विपथित और संदिग्ध रहा है । यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि संसद में अग्रिम जमानत के लिए कोई अवधि विहित नहीं की है । यह अस्प-ट है क्योंकि यह उल्लेख नहीं करता कि क्या आदेश को समय में सीमित करना चाहिए या यह परिवर्ती प्रकृति की है जब तक नियमित जमानत अभिप्राप्त नहीं की जाती । अग्रिम जमानत की कार्यात्मक अवधि के अवधारण के संबंध में कुछ न्यायालयों ने **गुरबक्श सिंह सिबिया**[163] वाले मामले के दृ-टांत का अनुसरण किया जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायालय आदेश के प्रचालन को सीमित कर सकता है यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल करने के पश्चात् संक्षिप्त अवधि के प्रचालन को ध्यान में रखते हुए अकाट्य कारण हैं । ऐसी दशा में आवेदक को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने के पश्चात् युक्तियुक्त समय के भीतर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अधीन न्यायालय में आवदेन करना चाहिए । तथापि, न्यायालय ने यह कहा कि आदेश के प्रचालन को सीमित करने और इसे समयबद्ध बनाने का कोई आत्यंतिक नियम नहीं हो सकता ।

6.10 **गुरबक्श सिंह सिबिया**[164] वाले मामले की नज़ीर के पश्चात् और 1996 के पूर्व, अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित करने की कोई पद्धति नहीं थी (गुजरात उच्च न्यायालय के अपवाद के साथ) । तथापि, इसे **सलाउद्दीन अब्दुल समद शेख** बनाम **महारा-ट्र राज्य**[165] वाले

---

[163] पूर्वोक्त टिप्पण 149

[164] -वही-

[165] ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 1042.

मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय द्वारा परिवर्तित किया गया । सलाउद्दीन के पहले गुजरात उच्च न्यायालय ने **सोमाभाई चतुरभाई पटेल** बनाम **राज्य**[166] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अग्रिम जमानत की अनुज्ञा समग्र अन्वे-ाण को बाधित करने के लिए नहीं दी जा सकती क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन अनुतो-न स्वयं विस्तृत व्याख्यायित है या गिरफ्तारी की तारीख से संक्षिप्त समयावधि की समाप्ति तक ही प्रवर्तनशील बना रहेगा और अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को अपने सामान्य अनुक्रम में नियमित जमानत अभिप्राप्त करना होगा । गुजरात उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आदेश में यह भी उपबंध होना चाहिए कि यह आदेश के 90 दिनों के भीतर कोई गिरफ्तारी न होने पर ही प्रवर्तनशील बना रहेगा । तथापि, यह नि-कर्-ा निकाला जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय ने वस्तुतः लगातार यह अभिनिर्धारित किया कि अग्रिम जमानत सीमित अवधि के लिए होनी चाहिए और यह अवधि की समाप्ति पर या अग्रिम जमानत मंजूर करने वाले न्यायालय द्वारा नियत विस्तारित अवधि की समाप्ति पर समाप्त हो जाएगा । नियमित न्यायालय को उसके समक्ष फाइल किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन के पश्चात् मामले पर विचार करना चाहिए जब अन्वे-ाण ने सारवान प्रगति की है या आरोप-पत्र प्रस्तुत कर दिया गया है ।

6.11 कर्नाटक उच्च न्यायालय ने **आई. वाई. चंदाइरप्पा** बनाम **कर्नाटक राज्य**[167] वाले मामले में अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित करने की आवश्यकता का उल्लेख किया । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहां किसी समय अग्रिम जमानत के आदेश को सीमित करने के लिए न्यायालय पर बाध्यता नहीं है वहां ऐसी शर्तें अधिरोपित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में कोई प्रति-ोध नहीं है । अतः व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आम जनता के प्रति कर्तव्य और ऐसे अपराध जो लोकहित में है और ऐसा हित अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, में अन्वे-ाण करने के पुलिस के कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक मामले में न्यायालय द्वारा अवधि पर विचार किया जाना चाहिए । **के. एल. वर्मा** बनाम **राज्य**[168] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा भी यह अभिनिर्धारित किया गया कि अग्रिम जमानत का आदेश विचारण की समाप्ति तक नहीं बना रहता और यह अपनी अवधि तक सीमित रहना चाहिए । अग्रिम जमानत की कालावधि उस दिन तक बढ़ाई जा सकेगी जब तक नियमित जमानत आवेदन का निपटान होता है या उसके पश्चात् संक्षिप्त अवधि के लिए जो अभियुक्त व्यक्ति को उच्चतर न्यायालय में अपील करने के लिए समर्थ बनाए । उच्चतम न्यायालय ने **अद्रिम धर्न दास** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[169] और **सुनीता देवी** बनाम **बिहार राज्य**[170] वाले मामलों में इस स्थिति को दोहराया जहां न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि असीमित अवधि के लिए दंड प्रक्रिया

---

[166] 1977 क्रि. ला. जे. 1523, परवीन्दरजीत सिंह और अन्य बनाम राज्य (संघ राज्यक्षेत्र चंडीगढ़) और अन्य, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 502.

[167] 1989 क्रि. ला. जे. 2405.

[168] (1998) 9 एस. सी. सी. 348.

[169] ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 1057.

[170] ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 498.

संहिता की धारा 438 के संरक्षात्मक छतरी का विस्तार करने का परिणाम दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 का दरकिनार करना होगा ।

6.12 यह कहना अनावश्यक है कि अग्रिम जमानत का आदेश सभी प्रकार के अविधिसम्मत क्रियाकलाप या किसी घटना को संरक्षित करने के लिए पारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पूर्ण और उचित अन्वे-ाण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है । त्रिपुरा राज्य ने दंड प्रक्रिया संहिता की नई धारा 439क अंतःस्थापित कर विधि को संशोधित किया जिसमें यह उपबंध है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439क के खंड (क) में विनिर्दि-ट गंभीर अपराधों की बाबत भारतीय दंड संहिता या आयुध अधिनियम या विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के अधीन गिरफ्तार की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत पर नहीं छोड़ा जाएगा जब तक न्यायालय का यह समाधान न हो कि याची अपराध का दो-ी नहीं है या यह कि याची को जमानत मंजूर करने के आपवादिक और पर्याप्त आधार हैं । आयोग की यह राय है कि सीमित अवधि के लिए अग्रिम जमानत को प्रचालनात्मक बनाने के अलावा कतिपय अपराधों में सतर्कता के साथ अग्रिम जमानत मंजूर किए जाने की आवश्यकता है ।

अध्याय 7

जमानत का रद्दकरण

7.1 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(5) और 439(2) जमानत के रद्दकरण से संबंधित हैं । जमानत के रद्दकरण का उद्देश्य नि-पक्ष विचारण सुनिश्चित करना और अपराध के ऐसे व्यक्ति को साक्ष्य से छेड़छाड़ करने (विशे-कर जघन्य अपराधों में) या आगे अपराध करने से जमानत द्वारा उन्मुक्त किया गया है, समाज के लिए न्याय सुनिश्चित करना है ; और जमानत रद्द करने में विलंब अभियोजन के अधिकतम प्रतिकूलता के साथ अपना सभी प्रयोजन और महत्व खो देगा ।[171]

7.2 इस आशय के निर्णय हैं कि एक बार जमानत मंजूर करने के पश्चात् यह विचार किए बिना कि क्या ऐसी कोई बाध्यकर परिस्थितियां हैं जिसके परिणामस्वरूप विचारण के दौरान जमानत के रद्दकरण के उपभोग द्वारा अभियुक्त व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता कायम रखने के लिए अनुज्ञात करने की कोई अधिक समीचीनता नहीं हर जाती, यांत्रिक ढ़ंग से जमानत रद्द नहीं किया जा सकता ।[172] क्योंकि जमानत का रद्दकरण अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की स्वतंत्रता से वंचित करता है इसलिए न्यायालय को रद्दकरण के लिए कारण बताना चाहिए । यदि उच्च न्यायालय जमानत के रद्दकरण के निदेश के लिए कोई कारण उपदर्शित करने में असफल रहता है तो आदेश कायम नहीं रखा जा सकता और अपास्त किया जाना चाहिए ।[173] उच्चतम न्यायालय ने **अब्दुल बाशित** बनाम **मोहम्मद अब्दुलकादीर चौधरी**[174] वाले मामले में जमानत के रद्दकरण के आधारों को संक्षेप में इस प्रकार उल्लेख किया – (i) आपराधिक क्रियाकलाप में लिप्त होकर अपराध के अभियुक्त व्यक्ति द्वारा स्वतंत्रता का दुरुपयोग, (ii) अन्वे-षण के अनुक्रम में हस्तक्षेप, (iii) साक्षी और साक्षियों से छेड़छाड़ करने का प्रयास, (iv) साक्षियों को धमकी देना या इसी प्रकार के क्रियाकलाप करना जो अन्वे-षण को बाधित करती है, (v) दूसरे देशों में भागने की संभावना, (vi) भूमिगत होकर या अन्वे-षण अभिकरण को अनुपलब्ध होकर स्वयं को दुर्लभ बनाने, (vii) प्रतिभू, आदि की पहुंच से परे जाने का प्रयास । ये आधार निदर्शी हैं न कि व्यापक ।[175]

7.3 कई व-र्षों से विभिन्न निर्णयों में विभिन्न कारक सूचीबद्ध किए गए हैं जो जमानत रद्दकरण के आदेश को न्यायोचित ठहराते हैं[176] ;

---

[171] पंचानन मिश्र बनाम दिगम्बर मिश्र, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 1299.

[172] दौलत राम बनाम हरियाणा राज्य (1995) 1 एस.सी.सी. 349 ; कश्मीरा सिंह बनाम दुमन सिंह ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 2176

[173] मंजीत प्रकाश बनाम शोभा देवी, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3032.

[174] (2014) 10 एस.सी.सी. 754.

[175] उच्चतम न्यायाल ने उद्धृत किया और गुरुचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन, पूर्वोक्त टिप्पण 149 पैरा 16 का अवलंब लिया जिसमें यह उल्लेख है कि " संहिता के अधीन जमानत के रद्दकरण से संबंधित उपबंध को सारगर्भित रूप से स्प-ट किया, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (पुरानी संहिता) से अंतर किया और जमानत की मंजूरी और रद्दकरण पर विधि की स्थिति और न्यायालय की शक्तियों को स्प-ट किया ।"

[176] लोक अभियोजक बनाम जॉर्ज विलियम्स, 1952 क्रि. ला. जे. 213 ; सुबोध कुमार यादव बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 802 ; पारस राम बनाम राज्य ए.आई.आर. 1951 एच.पी. 13 ; एम्पेरर बनाम रौतमल कानूमल, ए.आई.आर. 1940 बाम्ब. 40 ; एम्पेरर बनाम बी. बी. सिंह, ए.आई.आर. 1943 औध. 419 ; नरेन्द्रलाल खान बनाम एम्पेरर, आई.एल.आर. 36 काल. 166 ; श्यामलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1983 (2) क्राइम. 407 ; राज्य बनाम लक्ष्मण, ए.आई.आर. 1959 मनी. 47 ; ओस्मान पीरु बनाम एम्पेरर, ए.आई.आर.

• जमानत के दौरान अभियुक्त वही अपराध करता है जिसके लिए उसका विचारण किया जा रहा है या दो-नसिद्ध किया गया है ;

• अभियुक्त मामले के अन्वे-ण में बाधा पहुंचाता है ;

• अभियुक्त साक्ष्य से छेड़छाड़ करता है और साक्षियों को धमकी देता है ;

• अभियुक्त विदेश चला जाता है या भूमिगत हो जाता है या अपने प्रतिभुओं को नियंत्रण से परे चला जाता है ;

• अभियुक्त पुलिस और अभियोजन साक्षी के विरुद्ध बदले में हिंसा करता है ;

• नये साक्ष्य से यह पता चलता है कि अभियुक्त मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दो-ी है ;

• जहां यह आसन्न प्रकट होता है कि अभियुक्त जमानत का व्यतिक्रम करेगा ;

• जब आरोप का संशोधन किया जाता है या परिस्थितियों में परिवर्तन आता है ;

• जब अभियुक्त जमानत बंधपत्र के उल्लंघन में अभियुक्त ऐसे उत्पीड़न के लिए नियत तारीख को न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहने में असफल रहता है ;

• यदि जमानत तात्विक तथ्यों को छुपाकर अभिप्राप्त किया गया था ; और/या

• वरि-ठ न्यायालय यह पाते हैं कि जमानत मंजूर करने वाले न्यायालय ने असंगत तथ्यों या सामग्रियों पर कार्रवाई की या विवेक का कोई प्रयोग नहीं किया गया या प्रकट अनौचित्य रहा है ।

7.4 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) के अधीन जमानत के रद्दकरण का विचार, जमानत की मंजूरी या इनकारी के लिए लागू विचार से भिन्न है । तथापि, रद्दकरण के मामले में न्यायालय पहली नजर में जमानत के मंजूर करने के पीछे विचारों का मूल्यांकन कर सकता है यदि वह जमानत मंजूर करने के लिए अपर्याप्त कारण पाता है ।[177] प्राइवेट प्रतिवादी की दशा में मंजूर जमानत को परिवादी के अनुरोध पर रद्द किया जा सकता है । किंतु जब पुलिस ने अपराध का संज्ञान लिया है और इसके संबंध में आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया है और लोक अभियोजक राज्य की ओर से अभियोजन का संचालन कर रहा है तो तथ्यतः प्रतिवादी जमानत के रद्दकरण के लिए आवेदन कर सकेगा ।[178] हत्या विचारण में भी प्राइवेट पक्षकार को जमानत के रद्दकरण के लिए आवेदन लाने का अधिकार है जब विचारण न्यायालय जमानत मंजूर करता है ।[179] अपराध के ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को जिसे जमानत पर छोड़ा गया है, वापस अभिरक्षा में लेने की शक्ति का प्रयोग सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए । किंतु उस समग्र शक्ति के प्रयोग से इनकारी इसे एक मृत-पत्र बना देगी और न्यायालय न्यायिक प्रक्रिया के विध्वंश के मूक दर्शक ही रह जाएंगे ।[180]

1936 सिंध. 187 ; बोमनजी उकेर्जी बनाम राज्य, ए.आई.आर. 1955 एमवाईएस 96 ; अशोक कुमार बनर्जी बनाम राज्य, 1982 काश. ला. जे. 363 ; बिरेन्द्र सिंह बनाम राज्य, 1984 ए.ला.जे. 1111.

[177] राम गोविन्द उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह, ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 1475.

[178] (श्रीमती) गोयंका बनाम राजेश गोयंका, 1986 (1) क्रि. 325.

[179] संत राम बनाम कालीचरण, 1977 क्रि. ला. जे. 486.

[180] राज्य बनाम संजय गांधी, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 961

अध्याय 8

विशे-न विधियों में जमानत

8.1 व-र्ा 2015 के दौरान विशे-न और स्थानीय विधियों (इसमें इसके पश्चात् एस.एल.एल.) के अधीन अपराधों के लिए कुल 48,57,230 व्यक्ति गिरफ्तार किए गए । विभिन्न एस. एल. एल. अपराधों के अधीन पुलिस द्वारा अन्वे-णाधीन 46,46,419 मामलों में से ; (1) पुलिस 47,27,419 (एस. एल. एल. अपराधों के अधीन कुल गिरफ्तारी का 97.3%) के विरुद्ध पुलिस आरोप-पत्र फाइल कर सकी ; (2) ऐसे कुल व्यक्ति जो गिरफ्तार किए गए में से 1.5% व्यक्ति (48,57,230 व्यक्तियों में से 74,139) अभिरक्षाधीन हैं और ; (3) 6.6% व्यक्ति (48,57,230 व्यक्तियों में से 3,20,392) व्यक्ति जमानत पर थे ।[181]

क. जमानत और स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985

8.2 स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (इसमें इसके पश्चात् एन.डी.पी.एस. अधिनियम) के अधीन जमानत अपराध की गंभीरता, पदार्थ दुरुपयोग की मात्रा, देश में पदार्थ दुरुपयोग की व्यापक मामले और अधिनियम के अधीन उपबंधित दंड की मात्रा के आधार पर मंजूर की जाती है । (नीचे सारणी 4 देखें) । **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **काजद**[182] वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि ऐसा उद्देश्य जिसके लिए एन.डी.पी.एस. अधिनियम का अधिनियमन किया गया, ओ-धि दुर्व्यापार के संकट को समाप्त करना था । एन. डी. पी. एस. अधिनियम, 1985 की धारा 37 के परिशीलन से न्यायालय को कोई संदेह नहीं रह जाता है कि पांच व-र्ा या इससे अधिक के कारावास से दंडनीय अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को सामान्यतः जमानत पर नहीं छोड़ा जाएगा । जमानत का अधिकार नियम है और इसकी मंजूरी एन. डी. पी. एस. अधिनियम की धारा 37(1)(ख)(ii) के अधीन एक अपवाद है । एन. डी. पी. एस. अधिनियम के अधीन गंभीर मामलों में किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए क्योंकि वे समाज के लिए संभावित खतरा हैं और यदि छोड़ा गया तो वे दुर्व्यापार मादक ओ-धि के अपने क्रियाकलाप करते रहेंगे ।[183] विधि का निर्वचन ऐसी रीति से किया जाना चाहिए जिससे कि वह नापाक क्रियाकलापों और समाज विरोधी तत्वों से समाज को संरक्षित करे ।[184]

---

[181] रा-ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एन.सी.आर.बी.), गृह मंत्रालय, भारत में अपराध, 2016.

[182] ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 3317.

[183] अब्दुल हमीद खान बनाम गुजरात राज्य, 1989 क्रि. ला.जे. 468.

[184] -वही-

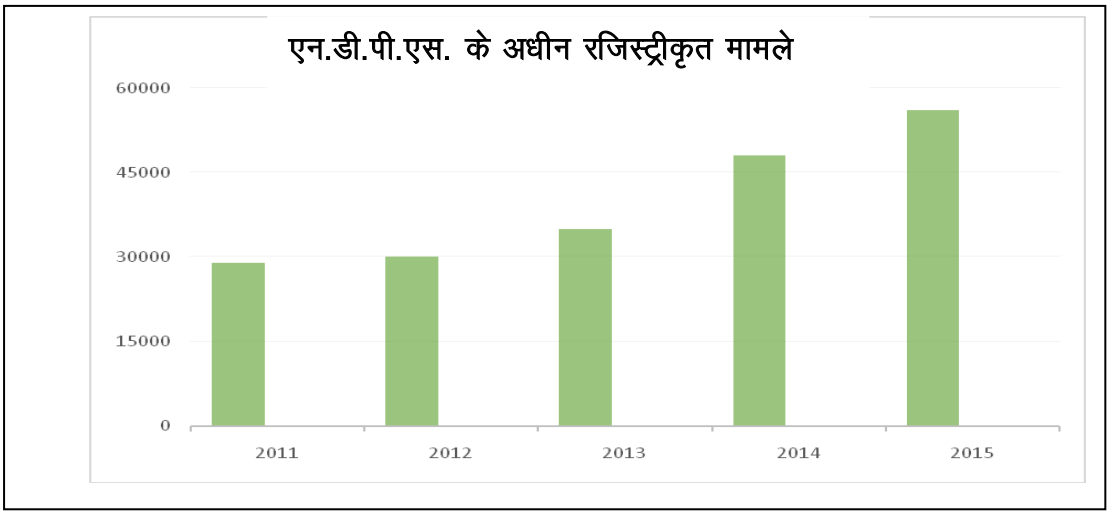

सारणी 4 - पिछले पांच व-र्षों में एन.टी.पी.एस. के अधीन दर्ज किए गए मामलों की संख्या

स्रोत - रा-ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो, 2015

8.3 एन. डी. पी. एस. की धारा 37(1)(ख) (ii) के अधीन जमानत मंजूर करते समय न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि अभियुक्त व्यक्ति दो-षी नहीं है और उसके द्वारा जमानत पर छोड़े जाने पर किसी अपराध के किए जाने की संभावना नहीं है । जमानत मंजूर करने के लिए उपरोक्त दोनों शर्तें पूरी होनी चाहिए । निःसंदेह एन. डी. पी. एस. के उपबंध कठोर है । अधिनियम वाणिज्यिक मात्रा वाले अपराधों और कतिपय अन्य अपराधों से आरोपी व्यक्ति को जमानत देते समय कठोर निर्बंधन अधिकथित करता है ।[185] ऐसी विशे-ा विधियां न्यायाधीशों को अभियुक्त व्यक्ति को जमानत मंजूर करने के लिए अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के निर्दो-िता के बारे में उच्च मात्रा के आश्वस्त होने की अपेक्षा है । **नारकोटिक कंट्रोल ब्यूरो** बनाम **दिलीप प्रहलाद नामदे**[186] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ''युक्तियुक्त आधार'' पद का अभिप्राय प्रथमदृ-ट्या आधार .... से कुछ अधिक है । उपबंध में अनुध्यात 'युक्तियुक्त विश्वास' ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के विद्यमान होने की अपेक्षा करता है जो समाधान को उचित ठहराने के लिए स्वयं में पर्याप्त हैं कि अभियुक्त व्यक्ति अभिकथित अपराध का दो-ी नहीं है और जमानत के समय उसके द्वारा किसी अपराध के किए जाने की संभावना नहीं है ।

8.4 एन. डी. पी. एस. अधिनियम में वाणिज्यिक मात्रा वाले अपराधों और कतिपय अन्य अपराधों[187] के लिए विचारण पूर्व निरोध अवधि 180 दिन है । यदि ऐसी समयावधि के भीतर अन्वे-ण पूरा किया जाना संभव नहीं है तो विशे-ा न्यायालय अन्वे-ण की प्रगति का उपदर्शित

---

[185] स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 19, 24 और 24क,

[186] (2004) 3 एस.सी.सी. 619.

[187] स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 19, 24 और 24क,

करने वाले लोक अभियोजक की रिपोर्ट और 180 दिनों की उक्त अवधि के परे अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के निरोध के लिए विनिर्दि-ट कारणों के आधार पर उक्त अवधि एक व-र् तक बढ़ाई जा सकेगी ।[188] **विचाराधीन कैदियों का प्रतिनिधित्व करने वाली सुप्रीम कोर्ट विधिक सहायता समिति** बनाम **भारत संघ**[189] वाले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि ऐसे विशे-ा विधानों के अधीन जमानत असंगत और अननुमेय बना रहता है अतः अभियुक्त व्यक्ति के अधिकारों के बारे में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण से संबंधित चिंता पैदा करता है ।[190] ऐसी विधि जो न्यायालयों को अपराधी को जमानत देने से विरत करती है किंतु विचारण की समाप्ति के लिए कोई समय-सीमा विहित नहीं करती, न्याय और स्वतंत्रा के सिद्धांतों के प्रतिकूल है ।[191] उच्चतम न्यायालय ने बार-बार यह चेतावनी दी है कि ऐसे मामलों का विनिश्चय शीघ्र किया जाए ।[192] तथापि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि ऐसे मामलों का निपटान अन्य मामलों की तुलना में तेजी से किया जा रहा है । **अचिंत नवीन भाई पटेल** उर्फ **महेश शाह** बनाम **गुजरात राज्य**[193] और **थाना सिंह** बनाम **केंद्रीय स्वापक ओ-धि ब्यूरो**[194] जैसे मामले उदाहरण में सम्मिलित हैं जहां उच्च न्यायालय ने एन.डी. पी. एस. अधिनियम की धारा 37 के अधीन जमानत पर अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को छोड़ने से इनकार कर दिया यद्यपि क्रमशः आठ व-र् और बारह व-र् से विचारण नहीं चल रहा था । विशे-ा परिस्थितियों और जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए भी 180 दिनों की अवधि का निरोध अधिक प्रतीत होता है जो ओ-धि संबंधी मामलों के परिवर्ती होते हैं । आतंकवाद संबंधी विधियों (नीचे चर्चा की गई है) को निर्दि-ट करना प्रासंगिक हो सकेगा जहां विधानों में यह अधिकथित है कि जमानत के बिना किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने की आवश्यक समयावधि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन 60 दिनों की उक्त अवधि से 90 दिन अधिक है । यह तर्क किया जा सकता है कि जब आतंकवाद विधियां जो ऐसे अपराधों को लागू होती हैं जो समाज के लिए ओ-धि संबंधी अपराधों से अधिक हानिकर हैं, निरोध की केवल 90 दिनों का उपबंध कर सकती है । परिणामतः ओ-धि संबंधी मामलों में निरोध को भी तुलनात्मक होना चाहिए ..... तथापि, ओ-धि दुर्व्यापार से संबंधित गंभीर अपराधों को न्याय प्रणाली को तिरस्कार करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि यह गलत पूर्वोदाहरण स्थिर करेगा और पर्याप्ततः ऐसे अपराधों का निवारण नहीं करेगा ।[195]

---

[188] स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की, धारा 36क(4).

[189] (1994) 6 एस.सी.सी. 731.

[190] अध्याय 5 : जमानत पर प्रकाशित ; विधि और अभ्यास .

[191] पूर्वोक्त टिप्पण 189 ; और शाहीन वेल्फेयर एसोसिएशन बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 2957.

[192] ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 2172.

[193] (2013) 2 एस.सी.सी. 590.

[194] द आस्ट्रेलियन (मूल्यांकन) 5 नवंबर, 1985.

[195] रौसीयु जीन जैकीज, द सोशल कंट्रेक्ट (कोले जी ट्रांसलेटर, पुनःप्रिंट, कोसीमो इनक. 2008) पैरा 3.

आतंकवाद और जमानत

8.5 'सामाजिक संविदा' सिद्धांत के अधीन किसी राज्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपनी सीमाओं को सुरक्षित करना और अपनी जनता तथा उनकी संपत्ति को संरक्षित करना है ।[196] आतंकवाद के अपराध की अपनी विशि-टताएं हैं क्योंकि यह रा-ट्रीय सुरक्षा शांति और एकता के मुद्दों को उजागर करता है । आतंकवादियों और विध्वंशकारी क्रियाकलाप अधिनियम, 1985 (टाडा) और आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 (पोटा) का अधिनियमन आतंकवाद और अन्य ऐसे विध्वंशकारी क्रियाकलापों को निवारित करने के लिए किया गया था । टाडा की धारा 20(7) में अग्रिम जमानत मंजूर करने से अभिहित न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को प्रतिनिद्ध किया गया है । इसके अतिरिक्त **उसमान भाई दाउद भाई मेनन** बनाम **गुजरात राज्य**[197] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि जहां टाडा की धारा 4 और 5 के अधीन किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को अभिरक्षा में लिया गया है वहां उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 या 482 के अधीन जमानत अर्जी ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं है ।

8.6 तथापि, यह स्प-ट किया गया है कि उच्च न्यायालय यह समाधान होने पर अभिहित न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर करने वाले आदेश के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका ग्रहण कर सकता है कि यह साबित करने की सामग्री नहीं है कि याची टाडा के अधीन किसी अपराध में लिप्त है और जमानत खारिज करने वाले आदेश के अपास्त करने का पात्र है ।[198]

8.7 **महारा-ट्र राज्य** बनाम **अब्दुल हामीद**[199] वाले मामले में उच्च न्यायालय ने कार्यवाहियों को अभिखंडित किया और जमानत मंजूर की किंतु उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए, उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त किया कि केवल विरलतम मामलों में ही यदि प्रथमदृ-ट्या अपराध का अभियुक्त व्यक्ति टाडा के अधीन अपराध नहीं कर सकता है तो भी उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में न्यायोचित है और अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले की ऐसी कोई परम प्रकृति नहीं है अतः जमानत का खंडन किया ।

8.8 टाडा के अधीन अभिहित न्यायालय को व्यतिक्रम द्वारा टाडा की धारा 20(4) के अधीन जमानत मंजूर करने की शक्ति है जब अन्वे-ण गिरफ्तारी के 180 दिनों के भीतर पूरा न हुआ हो । जमानत पर इस आधार पर आक्षेप नहीं किया जा सकता कि टाडा के अधीन अभिकथित अपराध की प्रकृति विकट और गंभीर है । और आगे रिमांड के लिए कोई अनुरोध टाडा की धारा 20(4)(खख) के अधीन किया जाना चाहिए जो मंजूर किया जा सकता है यदि उसकी शर्तें पूरी

---

[196] ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 922.

[197] डी. वीराशेखमारन बनाम राज्य, 1992 क्रि. ला. जे. 2168 (मद्रा.).

[198] 1994 (1) स्केल. 673.

[199] पूर्वोक्त टिप्पण 191.

होती हैं । टाडा के अधीन अभिकथित अपराध के लिए जमानत के आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को यह विनिश्चित करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए कि क्या दो-ा के अभिकथन युक्तियुक्त आधारों पर किए गए थे ।

8.9 विचारणों के अधीन टाडा को चार वर्गों में विभाजित किया गया है क्योंकि आतंकवाद के कठोर मामलों के परिणाम से अन्य मामलों की तुलना में अधिक कठोरता से निपटा जा सकता है । उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त पुनर्विलोकन समिति को जमानत मंजूर करने से संबंधित न्यायालय द्वारा जारी निदेश को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध मामलों की परीक्षा करने का निदेश दिया गया ।[200] जमानत मंजूर करने के प्रयोजन के लिए, टाडा निरुद्ध व्यक्तियों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता अर्थात् - (i) कठोरीकृत ऐसे विचाराधीन जिनका छोड़ा जाना अभियोजन के मामले के प्रतिकूल होगा और जिनकी स्वतंत्रता समाज और परिवादी या विशि-ट अभियोजन साक्षी के लिए संकट साबित होगा ; (ii) ऐसे अन्य विचाराधीन व्यक्ति जिनका प्रकट हेतुक या अंतर्वलन टाडा की धारा 3 और 4 के अधीन प्रत्यक्षतः लागू होती है ; (iii) ऐसे विचाराधीन व्यक्ति जिन पर भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख या 149 के आधार पर अनन्यतः अभिकथन किया गया है और (iv) ऐसे विचाराधीन व्यक्ति जिनके पास अधिसूचित क्षेत्रों में अभिशंसी वस्तुएं पाई गई थीं और टाडा की धारा 5 के अधीन मामला दर्ज किया गया था । व-र्ा 1996 में उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि अधिनियम के अधीन पुनर्विलोकन समिति द्वारा पुनर्विलोकित किए गए 9203 मामलों में से 7968 व्यक्तियों को टाडा अपराधों का गलत दो-ाी बनाया गया था ।[201]

8.10 पोटा की धारा 34 में यह उपबंध है कि किसी अपराध का अभियुक्त व्यक्ति विशे-ा न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए आवेदन कर सकेगा यदि जमानत से इनकार किया जाता है तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 का अवलंब लेते हुए जमानत मंजूर करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जा सकेगी । पोटा के अधीन जमानत मंजूर करने के लिए न्यायालय द्वारा अकाट्य सामग्री के आधार पर प्रथमदृ-ट्या मामला साबित किया जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने **तमिलनाडु राज्य** बनाम **आर. आर. गोपाल** उर्फ **नकीरण गोपाल**[202] वाले मामले में उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर जमानत को अपास्त किया । उसने यह अभिनिर्धारित किया कि जब अभियुक्त व्यक्ति से आयुध और गोलाबारुद की बरामदगी के दौरान अभिलेखों में अग्नायुध के विवरण में मात्र विसंगति है या यदि ऐसा अभिकथन विद्यमान है कि ऐसे अभियुक्त को संस्वीकृति करने के लिए मजबूर किया गया तो यह जमानत मंजूर करने के लिए पर्याप्त आधार स्थापित नहीं करता । तथापि, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पोटा के अधीन अपराधों की बाबत भी निरोध की एक व-र्ा की अवधि के पश्चात्, अपराध का अभियुक्त

---

[200] -वही-

[201] (2003) 12 एस.सी.सी. 237.

[202] पीपल यूनियन ऑफ सिविल लाइब्रेरीज बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 456.

व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता और पोटा की धारा 49(6) और (7) दोनों के अधीन जमानत की ईप्सा करने का पात्र होगा ।[203]

8.11 **मौलवी हुसैन इब्राहीम उमर जी** बनाम **गुजरात राज्य**[204] वाले मामले में याची को गोधरा घटना से संबंधित अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया गया था जिसमें 59 लोगों की मृत्यु हुई थी और काफी लोग क्षतिग्रस्त हुए थे । याची-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता, पोटा और सार्वजनिक संपत्ति नुकसान निवारण अधिनियम, 1984 की विभिन्न धाराओं के अधीन आरोपित किया गया था और उच्च न्यायालय के विशे-न न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय द्वारा भी जमानत से इनकार किया गया था ।

8.12 चूंकि पोटा निरसित किया गया और विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 (इसमें इसके पश्चात् यू. ए. पी. ए.) को आतंवाद के अपराधों को सम्मिलित करने के लिए संशोधित किया गया । विधि में यह उपबंध है कि जमानत आवेदन में लोक अभियोजक को सुने जाने का अधिकार होगा और अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ा नहीं जाएगा यदि अभिलेख से यह साबित होता है कि यह विश्वास करने का युक्तियुक्ति आधार है कि अभियोग प्रथमदृ-ट्या सही है ।[205] **जयंत कुमार घो-न** बनाम **असम राज्य**[206] वाले मामले में गुवहाटी उच्च न्यायालय ने यह चर्चा की कि 'प्रथमदृ-ट्या सही' का क्या अभिप्राय है । उसने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को यह अवधारित करना चाहिए कि क्या अभियोग 'स्वभावतः असंभाव्य या पूर्णतः अविश्वसनीय' हैं । ऐसी परिस्थितियों में ही व्यक्ति को जमानत पर छोड़ा जा सकता है । यू. ए. पी. ए. के अधीन जमानत का दृ-टिकोण पोटा और टाडा के अधीन जमानत की दृ-टिकोण से उदार है । पोटा और टाडा के अधीन इन विधानों के अधीन अपराधों के लिए जमानत पर वस्तुतः प्रति-नेध था । ये विधियां पुलिस को काफी शक्ति प्रदान करती हैं क्योंकि इन विधानों के अधीन मामले के दर्ज करने से वे यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि व्यक्ति कम से कम विचारण की अवधि तक कारागार में रहेगा ।[207] इन विधानों के अनियंत्रित दुरुपयोग के आलोक में वे संसद् द्वारा निरसित किए गए थे ।

8.13 विशे-न विधानों के अधीन मामलों में ऐसी समाप्ति की अवधि जिसके दौरान कानूनी जमानत का अधिकार उपलब्ध होता है, सामान्यतः बढ़ाया जाता है । उदाहणार्थ टाडा की धारा

---

[203] ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 4899.

[204] विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 43घ(5).

[205] 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन गाड. 586.

[206] स्वयं उच्चतम न्यायालय ने करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य, पूर्वोक्त टिप्पण 55 में इस संभाव्यता को माना जब उन्होंने यह कहा कि " हमारे समक्ष ऐसे मामले आए जिसमें अभियोजन ने जमानत पाने से अभियुक्त व्यक्तियों को वंचित करने के दूरस्थ हेतु से टाडा अधिनियम के उपबंधों का अयुक्तिसंगत अवलंब लिया और कुछ अवसरों पर जब न्यायालय सामान्य दंड विधि के अधीन दर्ज मामलों में जमानत देना चाहता है, अन्वे-क अधिकारी न्यायालय के प्राधिकार को दरकिनार करने के लिए टाडा अधिनियम के उपबंधों का अवलंब लेते हैं । ऐसे मामलों में टाडा के उपबंधों का इस तरह का अवलंब जिसके तथ्यों को लागू नहीं होता, कुछ नहीं बल्कि पुलिस द्वारा अधिनियम का मात्र दुरुपयोग है ।"

[207] आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 49(2).

20(4) कानूनी जमानत उपलब्ध होने के पूर्व आरोप-पत्र फाइल करने के लिए अन्वे-नक अधिकारियों को 180 दिन उपलब्ध कराती है । धारा में आगे यह उल्लेख है कि यदि अन्वे-नण पूरा नहीं होता है तो विशे-न न्यायालय 180 दिनों की उक्त अवधि से परे अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए निरोध के विनिर्दि-ट कारण और अन्वे-नण की प्रगति को उपदर्शित करते हुए लोक अभियोजक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर एक व-र्ा तक अवधि का विस्तार करेगा । इसी प्रकार पोटा की धारा 49(2) पोटा के अधीन सभी मामलों के लिए 90 दिनों तक निरोध को अनुज्ञात करती है । इसमें यह भी उल्लेख है कि यदि अन्वे-नण पूरा नहीं हुआ है तो विशे-न न्यायालय उक्त 90 दिनों से परे ऐसे अभियुक्त के निरोध के लिए विनिर्दि-ट कारण और अन्वे-नण की प्रगति उपदर्शित करते हुए लोक अभियोजक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर 180 दिनों तक अवधि का विस्तार करेगा ।[208] इसी प्रकार यू. ए. पी. ए. के अधीन जमानत के बिना निरोध की अवधि 90 दिन है ।[209] इसी तरह इसमें यह उपबंध है कि विशे-न न्यायालय 90 दिनों से उक्त अवधि से परे अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के निरोध के लिए विनिर्दि-ट कारण और अन्वे-नण की प्रगति उपदर्शित करते हुए लोक अभियोजक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर 180 दिनों तक उक्त अवधि का विस्तार कर सकेगा ।[210] यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता को प्रतिबिम्बित करने के लिए आतंकवाद के वैश्विक सोच में काफी परिवर्तन हुआ है कि ऐसा व्यापक विधायी अवसंरचना होनी चाहिए जो अंतरररा-ट्रीय आतंकवाद के अधिक खतरनाक युग को ध्यान में रखता हो । विधियों और भारत के संविधान के उपबंधों के संदर्भगत अर्थान्वयन से उपदर्शित होता है कि राज्य में निहित रा-ट्रीय सुरक्षा के अनुरक्षण का संप्रभु कृत्य इसका सर्वोपरि कृत्य है ।[211] तथापि, आतंकवाद के कार्य के रूप में किसी कार्य के वर्गीकरण मात्र का परिणाम जमानत की स्वतः इनकारी या सबूत के भार का प्रत्यावर्तन नहीं होना चाहिए । जमानत की इनकारी का प्रयोग राज्य के कार्यों को विधि सम्मत बनाने के हस्तलाघव के संभाव्य औजार के रूप में निहित किया जाना चाहिए ।

ग. संगठित अपराध और जमानत

8.14 संपूर्ण विश्व में संगठित अपराध की शाखाएं ओ-धि और आयुधों की तस्करी, मानव दुर्व्यापार, श्रमिक धोखाधड़ी, उद्यापन और अन्य अवैध क्रियाकलाप के रूप में फैली हुई है । आपराधिक संगठन की गतिविधियां आपराध के प्रेरकों की गिरफ्तारी या अधिक कठोर जमानत शर्तों पर भी उनके छोड़े जाने पर समाप्त नहीं होती । न्यायालय को यह मानना चाहिए कि ऐसे कारबार के बने रहने की ठोस प्रेरणाएं हैं । ऐसे व्यक्ति, कारबार का खतरा समुदाय को है जो स्वयं सिद्ध है क्योंकि इसमें हत्या, हिंसा और खतरा अंतर्वलित है । अतः कठोर जमानत उपबंध महारा-ट्र संगठित अपराध नियंत्रण, 1999 (मकोका) में उपबंधित हैं । मकोका दिल्ली राज्य में भी

---

[208] -वही-

[209] विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 43घ(2).

[210] ए. कोन्टे, आतंवाद निवारण और दंड में मानव अधिकार ; कामनवेल्थ दृ-टिकोण ; यूनाइटेड किंग्डम, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड 487-88 (स्प्रिंगर, 2010)

[211] -वही-

लागू है और विभिन्न अन्य राज्यों की समान विधियों के लिए आदर्श है । मकोका के अधीन जमानत पर निर्बंधन शब्दशः वही हैं जो टाडा के अधीन हैं ।[212] मकोका भी 90 दिनों तक विचारण पूर्व निरोध का उपबंध करता है । यदि अन्वे-ण इस समयावधि के भीतर पूरा नहीं होता है तो विशे-न न्यायालय 90 दिनों के उक्त अवधि के परे निरोध के विनिर्दि-ट कारण और अन्वे-ण की प्रगति उपदर्शित करने वाले लोक अभियोजक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर 180 दिनों तक अवधि का विस्तार करेगा ।[213]

8.15 **चेन्ना बोयन्ना कृ-ण यादव** बनाम **महारा-ट्र राज्य**[214] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि मकोका के अधीन जमानत मंजूर करने की शक्ति अधिनियम की धारा 21(4) में अधिकथित शर्तों के अधीन हैं जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 में अधिकथित शर्तों के अलावा हैं । मकोका की धारा 21(4) अभियोजन को सुनवाई के अवसर का उपबंध करती है और न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है के अपराध का अभियुक्त व्यक्ति अभिकथित अपराध का दो-ी नहीं है और ऐसे व्यक्ति द्वारा जमानत पर रहने के दौरान किसी अपराध के करने की संभावना नहीं है केवल तभी जमानत मंजूर की जा सकती है । ये शर्तें संचयी हैं न कि अनुकल्पी । मकोका के अधीन जमानत का विनिश्चय करते हुए उच्चतम न्यायालय ने **दत्रात्रे कृ-णजी धुले** बनाम **महारा-ट्र राज्य**[215] वाले मामले में यह कहा कि सकारात्मकता पाने के लिए साक्ष्य का अति सूक्ष्मता से विचार करना आवश्यक नहीं है यदि अपीलार्थी ने अभिकथित अपराध किया है । मकोका के अधीन जमानत के लिए मानक स्थिर करते हुए उच्चतम न्यायालय ने **रंजीत सिंह ब्रह्मजीत सिंह शर्मा** बनाम **महारा-ट्र राज्य**[216] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि जब तक न्यायाधीश का यह समाधान नहीं हो जाता कि दो-सिद्धि की संभावना नहीं है जो एक मानक चौखट है, जमानत मंजूर नहीं की जा सकती । इस प्रकार ऐसी विशे-न विधियों के अधीन मंजूर की जाने वाली जमानत के लिए उच्चतर मानक होनी चाहिए ।[217]

घ. आर्थिक अपराधों में जमानत

8.16 1992 के पश्चात् कई घोटाले रिपोर्ट किए गए जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में लाखों करोड़ों रुपए के रकम की हानि हुई । इनमें 2जी. घोटाला, सत्यम घोटाला, यू.टी.आई. घोटाला, चारा घोटाला, हर्-द मेहता घोटाला सम्मिलित हैं ।[218] 1992 से आर्थिक घोटालों के

---

[212] महारा-ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 की धारा 21(4).

[213] महारा-ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 की धारा 21(2).

[214] 2006 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 6384

[215] ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 1133.

[216] ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 2277

[217] डोनाल्ड डब्ल्यू प्राइस, ''अपराध और विनियम'' ; संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम सेलेर्नो 48(3) ला. एल. समी. 743 (1988).

[218] एन. गुर्नानी, भारत में आर्थिक घोटाला,एकेडमिक, अप्रैल, 2015.

कारण लगभग 73 लाख करोड़ रुपयों की हानि हुई । अकेले वर्ष 2012 में भारतीय अर्थव्यवस्था को लगभग 6,600/- करोड़ रुपए की हानि हुई ।[219] आर्थिक अपराध सामान्यतः देश की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचाते हैं और राष्ट्र की संवृद्धि, विकास और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को प्रभावित करते हैं । यह अंतरराष्ट्रीय तौर पर राष्ट्र के विश्वास, वित्तीय विश्वसनीयता और स्थिरता को भी नुकसान पहुंचाता है । इसे आगे नीचे सारणी 5 से देखा जा सकता है कि अकेले पिछले चार वर्षों में 4,000/- करोड़ रुपए के घोटाले दर्ज किए गए ।

सारणी 5

खो गई या कपट की गई संपत्ति का मूल्य*	2012		2013		2014		2015	
1-10	103	332	103	445	279	757	363	1166
10-25	14	64	11	68	17	20	21	42
25-50	7	31	5	39	6	11	6	10
50-100	0	15	1	13	0	5	1	11
100 से अधिक	8	15	3	14	3	4	5	4
जोड़	**132**	**457**	**123**	**579**	**305**	**797**	**396**	**1233**

*करोड़ में

सारणी 5 - पिछले चार वर्षों में दर्ज किए गए आर्थिक अपराध ।

स्रोत - राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो, 2015

8.17 आर्थिक अपराधों में जमानत के लिए विभेद करते हुए उच्चतम न्यायालय ने **गुजरात राज्य** बनाम **मोहनलाल जीतमलजी पोरवल और एक अन्य**[220] वाले मामले में यह टिप्पणी किया कि संपूर्ण समाज व्यथित है यदि आर्थिक अपराधियों को आरोपित नहीं किया जाता क्योंकि वे संपूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं ।

8.18 गुजरात उच्च न्यायालय ने एक बैंक कर्मचारी द्वारा छह लाख रुपयों के दुर्विनियोग वाले **चम्पक भाई अमीर भाई वासव** बनाम **गुजरात राज्य**[221] वाले मामले में जमानत आवेदन पर

---

[219] -वही-

[220] ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 1321.

[221] 2001 क्र. ला. जे. 4475.

विचार करते हुए, न्यायालय ने जमानत आवेदन को खारिज कर दिया और यह मत व्यक्त किया कि यदि बैंक कर्मचारी ऐसे अपराध करते हैं तो ऐसे उपभोक्ता जिनकी रकम बैंक में पड़ी है, सुरक्षित और निरापद नहीं होगी । ऐसे अपराध जो बैंक जैसे संस्थाओं में आम जनता की आस्था को डगमगाते हैं और संपूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं, को जमानत के लिए उचित मामला नहीं कहा जा सकता । **ललित गोयल** बनाम **केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त**[222] वाले मामले में सीमा-शुल्क, 1962 के अधीन जमानत आवेदन पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि आर्थिक अपराध एक अलग वर्ग गठित करते हैं और जमानत पर विचार करते समय भिन्न दृ-टिकोण अपनाया जाना चाहिए । बैंक ने निधियों के संबंध में छल और कूटरचना के **सुरेश चंद्र रमनलाल** बनाम **गुजरात राज्य**[223] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने सत्यापित चिकित्सा आधारों पर जमानत मंजूर करते हुए यह कठोर शर्त अधिरोपित किया कि याची चार मासवार किश्तों में बैंक के पास चालीस लाख रुपए की रकम जमा करेगा ।

8.19 **वाई. एस. जगनमोहन रेड्डी** बनाम **सी. बी. आई.**[224] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जमानत मंजूर करते समय न्यायालय को अभियोग की प्रकृति, उसके समर्थन में साक्ष्य की प्रकृति, अपराध के दंड की कठोरता, अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का चरित्र, ऐसी परिस्थितियां जो ऐसे अभियुक्त के लिए विशि-ट हैं, विचारण पर अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति सुनिश्चित करने की युक्तियुक्त संधार्यता, साक्षियों पर दबाव डालने की युक्तियुक्त आशंका, आम जनता/राज्य का व्यापक हित और अन्य समान धारणाओं पर ध्यान देना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने जमानत आवेदन को खारिज कर दिया क्योंकि उसने यह महसूस किया कि यह अन्वे-ण को बाधित कर सकता है । दुर्भाग्यवश पिछले कुछ व-र्ों में देश में सफेदपोस अपराधों की काफी तेजी से वृद्धि हो रही है जिसने देश की आर्थिक ढ़ांचे को काफी प्रभावित किया है ।[225] व्यक्तिगत वित्तीय अभिलाभों के लिए ऐसे अपराध लोकतंत्र की मूल धारणा के लिए अभिशाप हैं क्योंकि यह प्रणाली में लोगों की आस्था न-ट करता है ।[226] अतः जमानत मंजूर करते समय कठोर शर्तें अधिरोपित करने की आवश्यकता है ।

---

[222] (2007) 3 एस.सी.सी. 2282.

[223] (2008) 7 एस.सी.सी. 591.

[224] (2013) 7 एस.सी.सी. 439 ; जे. गोगोई, ''सामाजिक आर्थिक अपराध'' विधि का वार्-िक सर्वेक्षण वॉल्म. XLIX 1002 (भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली).

[225] राम नारायण पोप्ली बनाम सी.बी.आई., ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 2748.

[226] निरंजन नारायण हेमचंद्रा साशीत्तल बनाम महारा-ट्र राज्य, (2013) 4 एस. सी.सी. 642.

अध्याय 9

अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत

9.1 दो-नसिद्धि-पश्चात् जमानत अधिनिर्णीत करने की शक्ति बहुत व्यापक नहीं है । जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन आदेश पारित किया जाता है तो दंडादेश अपास्त नहीं होता है किंतु मात्र निलंबित या आस्थगित रहता है और सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए अपीलार्थी दो-नसिद्ध बना रहता है । इस उपबंध को अंतःस्थापित किया गया था क्योंकि जब अपील फाइल की जाती है तो दो-नसिद्धि पर पुनःनिर्णय लेने की आवश्यकता होती है और ऐसे विनिश्चय के लंबित रहने तक यदि यह ऐसा होता है तो अपीलार्थी दंडादेश का कुछ भाग भुगत चुकता होता है और अंततः जब निर्दो-न निर्णीत होता है तो उसकी पीड़ा अप्रतिवर्ती हो जाती है । **कश्मीरा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[227] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि समय से अपील का निपटान करने की असमर्थता के कारण व-र्षों तक दो-नसिद्धि को बंदी बनाकर रखना अनुचित होगा विशे-कर तब जब दो-नसिद्धि उलट दी जाती है क्योंकि यह व्यक्ति के लिए अपूरणीय हानि प्रदान करता है । अतः दंडादेश का रद्दकरण के साथ न्यायालय द्वारा अभिलिखित कारण होने चाहिए, दंडादेश के रद्दीकरण को न्यायोचित ठहराने की यह अपेक्षा उपदर्शित करती है कि सुसंगत कारकों पर सावधानी पूर्वक विचार किया जाना चाहिए और दंडादेश के रद्दकरण का निदेश देने वाला आदेश सरसरी प्रकृति का नहीं होना चाहिए ।[228] इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय ने **रमा नारंग** बनाम **रमेश नारंग**[229] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 की उपधारा (1) न केवल अपीलाधीन दंडादेश के प्रवर्तन को रद्द करने की बल्कि प्रतिभू सहित या रहित जमानत मंजूर करने की शक्ति प्रदान करती है यदि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति परिरोध में है ।

9.2 इस मत को उच्चतम न्यायालय द्वारा विभिन्न अन्य मामलों[230] में दोहराया गया है । इन सभी विनिश्चयों में यह सतर्क किया गया है और स्प-ट किया गया है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल आपवादिक परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिए जहां दंडादेश के रोक की असफलता अन्याय और अप्रतिवर्ती परिणाम पैदा करेगा ।[231] यह याद रखना चाहिए कि अपील लंबित रहने के दौरान जमानत अधिकार नहीं है और न्यायालय की विवेकीय शक्तियों पर निर्भर है ।[232] क्योंकि दो-नसिद्ध व्यक्ति का जमानत पर रहने का अधिकार लोक शांति और समाज की भलाई के अधीन है । दो-नसिद्धि -पश्चात् जमानत की स्थिति विचारण के समय जमानत की स्थिति से

---

[227] (1977) 4 एस.सी.सी. 291.

[228] मसूद अली खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 1465.

[229] (1995) 2 एस.सी.सी. 513.

[230] रवि कांत एस. पाटिल बनाम सारा बौमा एस. बागली, 2006 (1) जे.टी. (एस.सी.) 578 ; तमिलनाडु राज्य बनाम ए. जगनाथन, ए.आई.आर. 1996 एस. सी. 2449 ; के.सी. सरीन बनाम सी.बी.आई. चंडीगढ़, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 3320 ; और बी. आर. कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 3435.

[231] महारा-ट्र राज्य बनाम गजानन, ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 1188.

[232] कॉर्पस जुरीस सिकंदम, बॉल्म. 8 पैरा 85.

भिन्न है । इस प्रकार दो-नसिद्ध व्यक्ति अभियोजन के मामले में भारी खामियों को इंगित करने के लिए स्वतंत्र है जो अभियोजन के मामले की सार का उल्लेख करते हुए महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करेगा ।[233] इस प्रकार, दो-नसिद्धि के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय को यह विनिश्चय करना चाहिए कि यदि अपीलार्थी-दो-नसिद्ध व्यक्ति अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत मामले के आलोक में दो-नमुक्ति का उचित अवसर रखता है । इसके अतिरिक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 की अपेक्षा के अनुसार लोक अभियोजक को जमानत आवेदन की नोटिस और लिखित में जमानत का विरोध करने का अवसर भी दोनों उपलब्ध कराया जाना चाहिए जब दंड दस व-र्ा के कारावास से अधिक है । यद्यपि, ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने में लोक अभियोजक से भिन्न किसी व्यक्ति को कोई अवसर दिए जाने की अनुज्ञा प्रदान करता हो फिर भी उच्च न्यायालय को परिवादी या अपराध के पीड़ित को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लंबिताधीन अपील में जमानत में हस्तक्षेप करने या विरोध करने की अनुज्ञा देने की शक्ति है ।

9.3 यह उल्लेख करने की अपेक्षा है कि लंबिताधीन अपील में इस धारा के अधीन मंजूर जमानत को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) के अधीन रद्द किया जा सकता है । न्यायालय को अपील न्यायालय की कार्यवाही में उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए अपीलार्थी दो-नसिद्ध पर आवश्यक शर्तें अधिरोपित करने की शक्ति है अन्यथा यह न्याय की प्रक्रिया को विफल करेगा । इस आशय का दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389(3) के अधीन एक स्प-टीकरण जोड़ा जाना चाहिए कि न्यायालय स्वयं इस तथ्य का निश्चय करे कि अपीलार्थी-अभियुक्त विलंब के आशय से अपील फाइल नहीं कर रहा है और इस बात की बहुत संभावना है कि निर्णय अपीलार्थी-दो-नसिद्ध व्यक्ति के पक्ष में अपील में उलट जाएगा । प्रतिकूलतः जमानत पर एक अन्य महत्वपूर्ण उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क है जो उच्च अपील न्यायालय के समक्ष अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की हाजिरी सुनिश्चित करने की ईप्सा करता है जब ऐसे अभियुक्त को दो-नसिद्ध किया जाता है और विनिश्चय की अपील की जा सकती है ।[234] धारा में यह उपबंध है कि अपील के विचारण और निपटान की समाप्ति के पूर्व, यथास्थिति अपराध का विचारण करने वाला न्यायालय या अपील न्यायालय उच्च न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए प्रतिभुओं सहित जमानत बंध-पत्र नि-पादित करने के लिए अभियुक्त व्यक्ति से अपेक्षा करेगा जब कभी संबद्ध न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई किसी अपील या याचिका की बाबत ऐसा न्यायालय नोटिस जारी करता है और ऐसा बंध-पत्र छह माह के लिए प्रवृत्त रहेगा ।

9. 4 यह उपबंध समस्या पैदा करता है क्योंकि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति तब तक विचारण न्यायालय द्वारा दो-नमुक्ति के पश्चात् भी छोड़े जाने का हकदार नहीं है जब तक वह प्रतिभुओं सहित बंध-पत्र प्रस्तुत नहीं करता । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उच्चतम

---

[233] केशवनंनदा हरिनारायण स्वामी बनाम राज्य, 1997 क्रि. ला. जे. 3173.

[234] प्रवीण अग्रवाल बनाम सी.बी.आई., 2014 एस.सी.सी. ऑनलाइन डील. 4873.

न्यायालय ने बार-बार यह कहा है कि एक बार व्यक्ति के अपराध से दो-नमुक्त किए जाने पर निर्दोनिता की उपधारणा मजबूत हो जाती है और परिरोध से छोड़े जाने का मजबूत मामला बन जाता है । तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क के अधीन जहां व्यक्ति को निर्दो-न कहा जाता है किंतु वह प्रतिभू प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं है वहां धारा यह अपेक्षा करती है कि व्यक्ति को छोड़ा नहीं जाना चाहिए । दिल्ली उच्च न्यायालय, बम्बई उच्च न्यायालय और इलाहाबाद उच्च न्यायालय में इस उपबंध की विधिमान्यता के विरुद्ध लोकहितवाद और रिट याचिकाएं फाइल की गई हैं जो वर्तमान में इन न्यायालयों के समक्ष लंबित हैं ।[235]

9.5 गुजरात उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **गुजरात राज्य** बनाम **हरिश लक्षमण सोलंकी**[236] वाले मामले में केंद्रीय सरकार और राज्य प्राधिकारियों की ओर से निक्रियता पर अपना क्रोध व्यक्त किया जहां दो-नमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील की गई है वहां दो-नमुक्त अभियुक्त न खोजे जाने योग्य हैं और ऐसे व्यक्ति की तलाशी करना पुलिस के लिए एक दु-कर कार्य है । अतः न्यायालय ने इस प्रकार निदेश दिया :–

> ''परिस्थितियों के अधीन एक ओर अभियुक्त के हित और दूसरी ओर समाज के हितों का संतुलन बनाए रखने के लिए यह बिल्कुल युक्तिसंगत होगा यदि हम अधीनस्थ न्यायालय को निदेश दें कि अपील न्यायालय के समक्ष अभियुक्त की हाजिरी सुनिश्चित करने के लिए जमानत और बंध-पत्र स्वीकार करते समय, यह दो-नमुक्ति के आदेश की तारीख से 14 मास की और अवधि के लिए लिया जाना चाहिए ..... ।
>
> .....हम इस निर्णय की प्रति तत्काल विधि आयोग नई दिल्ली के अध्यक्ष और विधि न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के सचिव को तत्काल अत्यावश्यक विचार आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजने का निदेश देते हैं ।''

9.6 उक्त निर्देश के अनुसरण में, वि-नय पर भारत के विधि आयोग द्वारा अपने 154वीं[237] में विचार किया गया जिसमें निम्नलिखित सिफारिशें की गईं :–

> ''प्रस्तावित धारा 437क निम्नलिखित तरह से होना चाहिए –
>
> (1) विचारण की समाप्ति के पूर्व और अपील के निपटान के पूर्व यथास्थिति विचारण न्यायालय या अपील न्यायालय उच्चतर न्यायालय के समक्ष हाजिर होने का वचन-पत्र देते हुए, प्रतिभुओं सहित बंध-पत्र नि-पादित करने के लिए अभियुक्त से अपेक्षा करेगा जो 12 महीनों के लिए प्रवृत्त होगा और जब ऐसा न्यायालय उन संबद्ध

---

[235] अनीशा माथुर, '' लोकहित वाद ऐसी विधि को चुनौती देती है, जो दो-नमुक्ति के पश्चात् अभियुक्त को कारागार में रखती हैं'', इंडियन एक्प्रेस (21 अगस्त, 2014) ; '' जमानत के उपबंध को निरसित करने के लिए उठाए गए कदम, केंद्र ने उच्च न्यायालय से कहा'' बिजनेस स्टेंडर्ड (19 नवंबर, 2010).

[236] (1994) 35(1) जी.एल.आर. 581.

[237] पूर्वोक्त टिप्पण 73.

न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध फाइल किसी अपील या अर्जी की बाबत नोटिस जारी करता है ।

(2) यदि ऐसा अभियुक्त हाजिर होने में असफल रहता है तो बंध-पत्र समपहृत हो जाएगा और धारा 446 के अधीन प्रक्रिया लागू होगी ।

इसी तरह प्ररुप 45 को भी संशोधित किया जाए ।''

9.7 रिपोर्ट में यह स्प-ट है कि सिफारिश का आधार केवल यह था कि अपील में नोटिस तामिल करना कठिन हो जाता है यदि अपील न्यायालय दो-ामुक्ति की निर्णय की परीक्षा करना चाहता है और अपील ग्रहण के पश्चात् लंबित रहती है क्योंकि इस प्रकार दो-ामुक्त व्यक्ति की हाजिरी अजमानतीय वारंट के जारी करने के बावजूद भी प्राप्त नहीं की जाती है ।

9.8 विधि आयोग की सिफारिश को स्वीकार किया गया और दंड प्रक्रिया संहिता को 31 दिसंबर, 2009 से 2009 के अधिनियम सं. 5 द्वारा संशोधित किया गया । उक्त संशोधन **ओम प्रकाश टेकचंद बत्रा और एक अन्य** बनाम **गुजरात राज्य**[238] वाले मामले में गुजरात उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ निर्णय पर ध्यान दिए बिना किया गया जिसमें पूर्ण न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता और भारत के संविधान के विभिन्न उपबंधों पर ध्यान देने के पश्चात् अभिनिर्धारित किया था :-

'' ....इसी तरह धारा 437 की धारा 7 में एक अन्य महत्वपूर्ण उपबंध है जिसमें यह उपबंध है कि यदि अजमानतीय अपराध की अभियुक्त व्यक्ति के विचारण की समाप्ति के पश्चात् किसी समय और निर्णय के पूर्व दी जाती है तो न्यायालय की यह राय है कि यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि अभियुक्त किसी ऐसे अपराध का दो-ी नहीं है तो वह अपनी हाजिरी की प्रतिभुओं सहित बंध-पत्र उसके द्वारा पारित करने पर अभियुक्त को छोड़ देगा यदि वह अभिरक्षा में है । इस प्रकार, जब विधि इन उपबंधों में मजिस्ट्रेट द्वारा विचारित अभियुक्त के कानूनी मुक्ति का उपबंध है यदि विचारण छह माह में पूरा नहीं होता है और प्रभुओं के बिना छोड़े जाने के लिए भी यदि जहां विचारण समाप्त हो गया है किंतु निर्णय अभी नहीं दिया गया है और जब न्यायालय की यह राय है कि यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि बंध-पत्र पर उसके छोड़े जाने पर, यदि अभियुक्त अपराध का दो-ी नहीं है, यह ऐसे व्यक्ति के छोड़े जाने पर बल देने के लिए न्याय की विडम्बना होगी जिसका दो-ी न होना पाया गया है और दो-नसिद्ध किया गया है । अतः हमारी राय में धारा 354(1)(घ) के आज्ञापक उपबंध दो-ामुक्ति के सभी मामलों में लागू होते हैं और ऐसा अभियुक्त जो दो-ामुक्त हुआ है, अपने छोड़े जाने के लिए कोई जमानत या बंध-पत्र प्रस्तुत करने के लिए कहे जाने की किसी बाधा के बिना उन्मुक्त होने का हकदार है और कोई प्रतिकूल निर्देश प्रत्यक्षतः अधिकारिता विहीन और शून्य होगा । ...

---

[238] 1998 (3) जी.एल.आर. 2031.

.....अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि ऐसे कोई निदेश जो **गुजरात राज्य** बनाम **एच. एल. सोलंकी** (1994) 35 (1) गुजरात एल.आर. 581 वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा जारी किए गए थे, इस आशय से अधीनस्थ न्यायालयों को उच्च न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 482 के अधीन जारी नहीं किया जा सकता जब दो-नमुक्ति आदेश किया गया, अभियुक्त से दो-नमुक्ति के आदेश की तारीख से या किसी अवधि के लिए जो भी हो से 12 माह की अवधि के लिए अपील न्यायालय के समक्ष अपनी हाजिरी सुनिश्चित करने के लिए जमानत और जमानत बंध-पत्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा करनी चाहिए । मामले के इस दृ-टिकोण से हम एच. एल. सोलंकी वाले मामले के विनिश्चय की तर्काधार को उलटने के लिए मजबूर हैं । इस विनिश्चय का यह आवश्यक परिणाम होगा कि ऐसी शर्तें जो दो-नमुक्त याचियों से अपने जमानत प्रस्तुत करने पर ही छोड़े जाने की अपेक्षा करने वाले विचारण न्यायालयों द्वारा इन तीन मामलों में अधिरोपित की गई हैं, असंवैधानिक, अवैध और आरंभतः शून्य हैं और कायम नहीं रखी जा सकती । विचारण न्यायालय द्वारा ऐसी कोई शर्त या अड़चन अधिरोपित नहीं की जा सकती ।''

(बल दिया गया ।)

9.9 इन मामलों में विचारण न्यायालय ने निर्णय पारित करने और दो-नमुक्ति के आदेश के पश्चात् व्यक्ति बंध-पत्र और प्रतिभूतियां ली थीं जैसाकि **हरिश सोलंकी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा निदेशित किया गया था ।

9.10 13 फरवरी, 2012 को विनिश्चित **नन्नु और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[239] , 2007 की दंड प्रक्रिया संहिता के धारा 374 के अधीन आपराधिक अपील सं. - 5201 वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णयों और विधि आयोग की 154वीं रिपोर्ट दोनों पर विचार किया और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क की संवैधानिक विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार किए बिना निम्नलिखित सुझाव दिया :–

''96. सामान्यतः जमानत विचारण के लंबित रहने के दौरान मंजूर किया जाता है, यद्यपि कुछ मामलों में यह इनकार किया जाता है । इसी प्रकार दो-नसिद्धि के विरुद्ध अपील के मामले में है । संभवतः, बेहतर व्यवहार्य प्रक्रिया यह होगी कि जब कभी जमानत अन्वे-नण या विचारण या अपील स्तर के दौरान मंजूर किया जाता है तो धारा 437क निबंधनों और शर्तों को सम्मिलित करते हुए जमानत बंध-पत्र में एक खंड जोड़ा जाना चाहिए । यह दूसरी बार नए सिरे से जमानत बंध-पत्र नि-पादित करने को दूर करेगा और अनावश्यक कागजों के दोहरेपन से बचा जा सकेगा ..... ।

101. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क भी कुछ स्प-टीकरण की अपेक्षा करती है । एक ऐसा मामला लीजिए जहां जमानत मंजूर की गई या मंजूर की गई किंतु

[239] 2012 (2) ए.सी.आर. 1261.

अभियुक्त/दो-नसिद्ध व्यक्ति को जमानत पर नहीं छोड़ा जा सकता क्योंकि वह प्रतिभूति नहीं दे सका या ऐसा मामला जहां अभियुक्त/दो-नसिद्ध व्यक्ति कारागार में है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क के अधीन जमानत बंघ-पत्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा के अनुसरण में यह कहता है कि वह प्रतिभू नहीं दे सकता । क्या इसका यह अर्थ है कि विचारण का संचालन नहीं किया जाएगा या अपील की सुनवाई नहीं की जाएगी या यदि उसे दो-नमुक्त किया जाता है तो वह छह मास के लिए छोड़ा न जाए ? संभवतः ऐसी स्थिति में, व्यक्तिगत बंध-पत्र पर्याप्त होना चाहिए । किंतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क की विद्यमान भा-ना इसकी अनुज्ञा नहीं देती ....।"

9.11 न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते समय गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय का विश्ले-ण करने में गलती की कि पूर्ण न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया था कि इस प्रकार अधिरोपित शर्तें असंवैधानिक हो सकती हैं, यद्यपि पूर्ण न्यायपीठ ने उन्हें असंवैधानिक, अवैध और आरंभतः शून्य घोनित किया था ।

9.12 हमारे विचार-विमर्श के दौरान काफी संगठनों, अधिवक्ताओं ने गुजरात उच्च न्यायालय (उपरोक्त निर्दि-ट) के पूर्ण न्यायपीठ निर्णय के आलोक में यथावत् इस उपबंध के हटाने का आग्रह किया । तथापि, इस प्रकार दो-नमुक्त व्यक्ति की हाजिरी सुनिश्चित करने को सुकर बनाने के लिए उसका व्यक्तिगत बंध-पत्र पर्याप्त हो सकता है । यह तर्क किया गया कि ऐसी दशा में अन्य प्रतिभुओं के साथ किसी तरह का दायित्व नहीं जोड़ा जाना चाहिए । इस दृ-टि से, आयोग की यह राय है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क का तदनुसार संशोधन किया जाए । पूर्वोक्त सिफारिशों के अनुसार, प्ररुप 45क दंड प्रक्रिया संहिता के दूसरी अनुसूची में अंतःस्थापित किया जाए । आगे प्ररुप 45 का उपयोग इस धारा के प्रयोजनों के लिए नहीं किया जाएगा ।

अध्याय 10

धनीय जमानत, निर्धन और विचाराधीन व्यक्ति

10.1 जमानत प्रणाली पर प्रायः बार-बार उठाई जाने वाली आलोचनाओं में से एक आलोचना यह है कि यह धन पर आधारित है क्योंकि दंड विधि में विभिन्न सुधारों के पश्चात् भी प्रतिभू ही है जो गरीब व्यक्तियों के विरुद्ध विभेद करता है । वित्तीय रूप से सुदृढ़ व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता खरीदने में आसानी से सफल हो सकते हैं जबकि वित्तीय जमानत प्रणाली से पीड़ित - गरीब व्यक्ति कारागार में रहते हैं क्योंकि वे धन नहीं प्राप्त कर सकते ।[240] असल में, भुगतान करने की योग्यता यह विनिश्चय करने का एक मात्र कारक होती है जो मुक्त हो जाते हैं और जो कारागार में पड़े होते हैं ।[241] इस पद्धति की स्वाभाविक अनौचित्य यह प्रश्न पैदा करता है कि क्या ऐसी पद्धति वस्तुतः व्यावहारिक है ।

10.2 **रूदल शाह** बनाम **बिहार राज्य**[242] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय निर्धन व्यक्तियों की स्थिति के बारे में राज्य कार्यपालिका की नि-क्रियता के सबसे बुरे उदाहरण की आंख खोलने वाली घटना है । तारीख 3 जून, 1968 को सक्षम दंड न्यायालय द्वारा सभी आरोपों से दो-मुक्त होने के बावजूद उसे 14 व-र्ा पश्चात् अर्थात् 16 अक्तूबर, 1982 को कारागार से छोड़ा गया था ।

10.3 **मोती राम** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[243] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि आधारिक तरीका जिसके आधार पर न्यायालय के समक्ष हाजिर होने की शर्त सहित जमानत शर्तें अधिरोपित की जाती हैं, अभियुक्त व्यक्ति की आर्थिक दशा परवाह किए बिना वित्तीय बाध्यताओं और धनीय जोखिम के अधीन अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को रखा जाता है । यह तरीका विश्व के कई भागों में व्याप्त है । समस्या तब पैदा होती है जब जनसंख्या के 21 प्रतिशत से अधिक जनसख्या गरीबी रेखा से नीचे रह रही है ।[244] यह निर्धन जनसंख्या और न्याय तक उनकी पहुंच को प्रभावित करता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 440 से 450 किसी व्यक्ति को छोड़े जाने की शर्तें उपवर्णित करती है जो अन्यथा जमानत के लिए पात्र हैं । इन उपबंधों के पीछे धारणा यह है कि यह अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से धनीय आश्वासन उपलब्ध कराने की अपेक्षा करती है कि वह जब कभी अपेक्षा होगी न्यायालय के समक्ष हाजिर होगा और अन्य जमानत शर्तों का पालन करेगा अन्यथा आश्वासन रकम समपहृत हो जाएगी । इस प्रकार छोड़े जाने के पूर्व, ऐसे व्यक्ति जिसे जमानत दी गई है, से जमानत की शर्तों का पालन करने की सहमति देते हुए बंध-पत्र नि-पादित करने की अपेक्षा की जाती है ।[245] यह बंध-

---

[240] हेरी 1. सबिन, गोल्डफार्ब की कीताब की समीक्षा, रेनसम - अमेरिकन जमानत प्रणाली की आलोचना, 114(4) यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलवेनिया.विधि समीक्षा 630-36 (1966) देखें ।

[241] वॉरेन एल. मिलर, जेल सुधार अधिनियम, 1966, 1969 में सुधार की आवश्यकता'' 19 कैथ. यू. एल. समी. 24 (1970).

[242] ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 1086.

[243] पूर्वोक्त टिप्पण 4.

[244] योजना आयोग, ''गरीबी मूल्यांकन पर प्रेस नोट, 2011-12'' भारत सरकार (22 जुलाई, 2013).

[245] धारा 441 भा. दं. प्र. सं.

पत्र न्यायालय द्वारा यथास्थिर धनी की कतिपय रकम के लिए है यदि व्यक्ति जमानत शर्त का व्यतिक्रम करता है तो न्यायालय बंध-पत्र को समपहृत कर लेगा और व्यक्ति से शास्ति के रूप में धन अदा करने की अपेक्षा करेगा ।[246] ऐसा करने में असफल होने पर, शास्ति की वसूली उसी तरह से की जाएगी जैसा न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने के संबंध में की जाती है । यदि शास्ति की रकम की वसूली नहीं की जा सकती हो तो व्यक्ति छह मास तक सिविल कारावास का दायी होगा ।[247] इस प्रक्रम पर यह उल्लेख करना अपेक्षित है कि जमानत शर्त के भाग के रूप में अभिहित तारीख पर न्यायालय के समक्ष पर्याप्त कारण के बिना हाजिर होने की असफलता भारतीय दंड संहिता की धारा 229क के अधीन एक अपराध है ।

10.4 अपराध के अभियुक्त व्यक्ति द्वारा बंध-पत्र के नि-पादन की अपेक्षा के अलावा न्यायालय गारंटी के रूप में एक या अधिक प्रतिभू उपलब्ध कराने की ऐसे अभियुक्त से अपेक्षा कर सकेगा कि व्यक्ति जमानत शर्तों का पालन करेगा । यदि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति ऐसा करने में असफल रहता है तो प्रतिभू रकम समपहृत हो जाएगी । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 440 में यह उपबंध है कि जमानत रकम ''मामले की परस्थितियों का सम्यक् ध्यान रखकर नियत की जाएगी और अत्यधिक नहीं होगी'' ।[248] उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, पुलिस या मजिस्ट्रेट द्वारा नियत रकम को कम कर सकेगा ।[249] **शंकर** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[250] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से संबंधित सभी कारकों पर विचार करने के लिए राज्य पर उत्तरदायित्व सौंपा । निर्णय ने इस मामले में जमानत से जुड़ी शर्तों को उदार बनाया । छोटे अपराधों से आरोपित किसी अभियुक्त को व्यक्तिगत बंध-पत्रों पर छोड़े जाने के लिए कहा गया और गंभीर अपराधों से आरोपित लोगों को केवल 1000/- रुपए की रकम की एक प्रतिभू के साथ व्यक्तिगत बंध-पत्र छोड़े जाने के लिए कहा गया ।

10.5 इस बाबत, 1971 में गुजरात सरकार द्वारा नियुक्त न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती की अध्यक्षता वाली ''विधिक सहायता समिति की रिपोर्ट[251] और व-र्ा 1973 में न्यायमूर्ति कृ-ण अय्यर की अध्यक्षता वाली विधिक सहायता विशे-ाज्ञ समिति द्वारा 'लोगों को प्रक्रियागत न्याय'[252] की रिपोर्ट का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण हैं । न्यायमूर्ति भगवती ने अपनी रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया कि जमानत प्रणाली गरीब लोगों के विरुद्ध विभेद कारित करती है क्योंकि गरीब लोग अपनी वित्तीय असमर्थता के कारण जमानत देने में समर्थ नहीं होते जबकि धनवान व्यक्ति

---

[246] धारा 446 भा. दं. प्र. सं.

[247] -वही-

[248] धारा 440(1) भा. दं. प्र. सं.

[249] धारा 440 (2) भा. दं. प्र. सं.

[250] 1996 क्रि. ला. जे. 4.3.

[251] गुजरात सरकार, विधि सहायता समिति की रिपोर्ट (1971)(अध्यक्ष : उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश पी. एन. भगवती) ; भारत सरकार, विधि न्याय और कंपनी मामलों के मंत्रालय ।

[252] विधिक सहायत पर विशे-ाज्ञ समिति की रिपोर्ट ; लोगों के लिए न्याय प्रक्रिया (1973) (अध्यक्ष : न्यायमूर्ति वी. के. कृ-णा अय्यर), भारत सरकार, विधि न्याय और कंपनी मामलों के मंत्रालय ।

अपनी स्वतंत्रता अर्जित करने में समर्थ होता है क्योंकि वे जमानत देने में समर्थ हो सकते हैं ।[253] रिपोर्ट में स्प-ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि जमानत प्रणाली की यह बुराई है कि या तो दरिद्र व्यक्ति जमानत उपलब्ध कराने के लिए दलालों या वृत्तिक प्रतिभुओं के पीछे पड़े या विचारण पूर्व निरोध भुगते । ये दोनों परिणाम गरीब व्यक्तियों के लिए बहुत भयकारी है । एक ओर वे दलालों या वृत्तिक प्रतिभुओं के पीछे भागते हैं और कभी-कभी अपना छोड़ा जाना अर्जित करने के लिए उन्हें भुगतान करने हेतु ऋण भी अर्जित करते हैं ; दूसरी ओर वे विचारण और दो-ासिद्धि के बिना अपनी स्वतंत्रता से वंचित रहते हैं ; इन सभी का घोर परिणाम निकलता है ।

10.6 व-र्ा 1973 में न्यायमूर्ति कृ-णा अय्यर की अध्यक्षता वाली विधिक सहायता की विशे-ाज्ञ समिति ने 'लोगों को प्रक्रियात्मक न्याय'[254] शी-र्ाक की अपनी रिपोर्ट में धनीय जमानत प्रणाली के अनुकल्प का उपबंध है । यह कहा गया है कि धनीय प्रतिभुओं या वित्तीय प्रतिभूति के बिना छोड़े जाने की शर्तों की उदारवादी नीति और अतिक्रमण के लिए दंड के उपबंध के साथ अपने निजी मुचलके पर छोड़े जाने के लिए जमानत प्रणाली में सुधार के लिए काफी समय लगेगा और विधि के अधीन समान न्याय पाने के समुदाय के कमजोर और गरीब वर्गों की सहायता करेगा । सशर्त उन्मुक्ति अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को अपने नातेदारों की देखरेख और पर्यवेक्षण में सौंपे जाने का एक रूप ले सकती है । न्यायालय या जमानत मंजूर करने वाले प्राधिकारी को स्वविवेक का प्रयोग न्यायिकतः करना चाहिए । जब अभियुक्त व्यक्ति प्रतिभू पाने में असमर्थ होता है तो प्रतिभुओं सहित जमानत पर बल देने का कोई मुद्दा नहीं होगा क्योंकि यह उनका बचाव दिलाने में परिणामी अड़चन के साथ अभिरक्षा में उन्हें रखे जाने को भी मजबूर करेगा ।[255]

10.7 विशे-ाज्ञ समिति रिपोर्ट में भी दंड प्रक्रिया संहिता में यथावर्गीकृत जमानतीय अपराधों के प्रवर्ग को बढ़ाने, और विचारण पूर्व प्रक्रिया जो परिरोध की अवधि को कम कर सकती है, के शीघ्र पूरा करने पर बल देने जैसी सिफारिशें भी की गई हैं । यह भी उल्लेख किया गया है कि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति को जमानत के लिए आवेदन करने हेतु अधिवक्ता तक पहुंच रखने की आवश्यकता होगी ।[256] विधि के अनुसार, यह सुनिश्चित करना अपेक्षित है कि विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाए किंतु, व्यवहार में, यह आरोप-पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् ही होता है । अतः निर्णायक आरोप प्रक्रम के पूर्व अधिवक्ताओं की पहुंच केवल उन तक ही सीमित है जो अधिवक्ता नहीं लगा सकते और जो संभवतः जमानत का खर्च उठाने में भी समर्थ नहीं हैं ।

10.8 उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त उजागर की गई चिंताओं पर ध्यान दिया । **हुसैन नारा खातून**[257] वाले मामले में न्यायालय ने जमानत प्रणाली की संपत्ति आधारित प्रणाली पर टिप्पणी

---

[253] पूर्वोक्त टिप्पण 73.
[254] पूर्वोक्त टिप्पण 252.
[255] पूर्वोक्त टिप्पण 251.
[256] -वही- 77-78 पर.
[257] पूर्वोक्त टिप्पण 58.

की और यह उल्लेख किया कि यह व्यापक धारणा पर आधारित है कि धनीय हानि का जोखिम न्याय से भाग जाने के विरुद्ध एक मात्र निवारक है । न्यायालय ने यह उजागर किया कि जहां अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को व्यक्तिगत बंध-पत्र पर छोड़ा जाना है वहां भी विधि उस आशय के बंध-पत्र के नि-पादन के माध्यम से न्यायालय में उपस्थित होने की वित्तीय बाध्यता के अधीन रखे जाने की व्यक्ति की अपेक्षा करती है ।[258] तथापि, न्यायालय यंत्रतः इस बात पर बल देते हैं कि अभियुक्त व्यक्ति को ऐसी प्रतिभूतियां प्रस्तुत करनी चाहिए जो उनके लिए जमानत प्रस्तुत करे और ये प्रतिभुएं जमानत की रकम का भुगतान करने में समर्थ बनाने के लिए उनकी शोधन क्षमता सिद्ध करती हैं यदि ऐसा अभियुक्त आरोप का उत्तर देने के लिए हाजिर होने में असफल रहता है । ऐसे लोगों के लिए जमानत जिनकी पहुंच स्थानीय रूप से प्रतिभुओं तक नहीं हैं, का मुद्दा **मोती राम**[259] वाले मामले में केंद्र बिंदु था । यहां मजिस्ट्रेट ने इस आधार पर अभियुक्त व्यक्ति के भतीजे द्वारा दिए गए प्रतिभू पर विचार करने से इनकार कर दिया था कि वह अभियुक्त के भौगोलिक स्थिति से नहीं है । उच्चतम न्यायालय ने आदेश को उलट दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय मात्र इस कारण प्रतिभू को अस्वीकार नहीं कर सकते कि प्रतिभू या प्रतिभुओं की संपदा भिन्न-भिन्न जिले या राज्य में स्थित हैं । राज्य के बाहर विचाराधीन कैदियों के लिए स्थानीय प्रतिभुओं की अपेक्षा प्राप्त करना कठिन है ।

10.9 न्यायालय को जमानत के लिए युक्तियुक्त शर्तें अधिरोपित करनी चाहिए क्योंकि आदेश न्यायसंगत होना चाहिए । न्यायालय को स्थानीय प्रतिभुओं पर बल भी देना चाहिए क्योंकि यदि अभियुक्त व्यक्ति ऐसी अपेक्षा पूरा करने की स्थिति में नहीं है फिर भी आदेश पारित किया गया है तो अभियुक्त व्यक्ति के लिए ऐसी शर्तों का पालन सुनिश्चित करना संभव नहीं हो सकता है । न्यायालय ऐसी प्रतिभू देने के लिए उसे समर्थ बनाने के अपने आदेश को उपांतरित कर सकेगा जिसे स्थानीय व्यक्ति होने की आवश्यकता नहीं है । कदापि नहीं, आदेश ऐसा दुर्भर होना चाहिए कि जमानत मंजूर करने का प्रयोजन विफल हो जाएगा यदि उन शर्तों को पूरा करना अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए संभव न हो ।[260]

10.10 **विचाराधीन कैदियों का प्रतिनिधित्व करने वाली सुप्रीम कोर्ट विधि सहायता समिति**[261] वाले मामले में विचाराधीन कैदियों के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विचाराधीन व्यक्तियों की कारागार की असम्यक् लंबी अवधि संविधान के अनुच्छेद 14 और 21क अतिक्रमण करती है । इस कारण से, न्यायालय ने यह निदेश दिया कि यदि अभियुक्त व्यक्ति ने उस अपराध जिसके लिए उसे आरोपित किया गया है, विनिर्दि-ट अधिकतम

---

[258] धारा 441, भा. दं. प्र. सं.

[259] पूर्वोक्त टिप्पण 3.

[260] मोती राम, पूर्वोक्त टिप्पण 3 ; केशब नारायण बनर्जी बनाम बिहार राज्य ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 1666 ; संदीप जैन बनाम एन.सी.टी. ऑफ दिल्ली, ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 714 ; एम. श्रीनिवासुलू रेड्डी बनाम तमिलनाडु राज्य (2002) 10 एस.सी.सी. 653 ; और अमरजीत सिंह बनाम एन.सी.टी. ऑफ दिल्ली सरकार, जे.टी. 2002 (1) एस.सी. 291.

[261] पूर्वोक्त टिप्पण 189.

दंडादेश के आधे दंडादेश को भुगत लिया है, उसे उस पर अधिरोपित जमानत की शर्तों को पूरा करने के अधीन रहते हुए जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए ।

10.11 इस मानक को दंड प्रक्रिया संहिता में 2005 के संशोधन के द्वारा जोड़ा गया था जिसके द्वारा धारा 436क संहिता में जोड़ा गया । इस धारा में यह उपबंध है कि यदि अभियुक्त व्यक्ति उस अपराध के लिए विनिर्दि-ट कारावास की अधिकतम अवधि के आधे का निरोध भुगत लिया है जिसका आरोप उस पर लगाया गया है तो ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को प्रतिभुओं सहित या रहित व्यक्तिगत बंध-पत्र पर न्यायालय द्वारा छोड़ा जाएगा । मृत्यु से दंडनीय अपराधों के लिए आरोपित व्यक्तियों को इस उपबंध का फायदा प्राप्त नहीं होगा । धारा के परंतुक में यह उपबंध है कि न्यायालय लोक अभियोजक की सुनवाई के पश्चात् ऐसे व्यक्ति के उस आधी अवधि से दीर्घतर अवधि के लिए निरोध को जारी रखने का आदेश कर सकेगा या व्यक्तिगत बंध-पत्र के बजाए प्रतिभुओं सहित या रहित जमानत पर उसे छोड़ सकेगा । न्यायालय लिखित में इसके लिए कारण अभिलिखित करेगा । धारा के दूसरे परंतुक में यह उल्लेख है कि किसी अभियुक्त व्यक्ति को अपराध के लिए कारावास की अधिकतम अवधि से दीर्घतर अवधि के लिए निरुद्ध नहीं किया जाएगा । इस उपबंध के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय ने **भीम सिंह** बनाम **भारत संघ**[262] वाले मामले में मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए । उसने अधिकारितागत मजिस्ट्रेट/मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट/सेशन न्यायाधीश को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन जमानत के लिए पात्र विचाराधीन कैदियों की पहचान करने के लिए 1 अक्तूबर, 2014 से दो मास के लिए प्रत्येक जेल/कारागार में बैठने और स्वयं कारागार में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के बाबत समुचित आदेश पारित करने का निदेश दिया । उसने प्रक्रिया को सुकर बनाने के लिए प्रत्येक जेल/कारागार के जेल अधीक्षक को निदेश दिया ।

10.12 इस संदर्भ में यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि **आर. डी. उपाध्याय** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[263] वाले पूर्व मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि हत्या के प्रयास के आरोपी विचाराधीन कैदियों को जमानत पर छोड़ दिया जाए यदि उनके मामले दो व-र्ा या अधिक से लंबित हैं ; और यह कि चोरी, छल आदि जैसे तुलनात्मकतः छोटे अपराधों से आरोपी व्यक्तियों को छोड़ दिया जाए यदि वे एक व-र्ा से अधिक समय से कारावास में हैं । न्यायालय ने दो महत्वपूर्ण निर्देश जोड़े ; (1) विचारण न्यायालय जमानत पर ऐसे व्यक्तियों पर विचार करने के बाध्यताधीन है । न्यायालय ने स्प-ट किया कि विचाराधीन कैदियों के लिए जमानत के लिए आवेदन करना आवश्यक नहीं था । (2) न्यायालय ने निर्देश दिया कि जहां विचाराधीन कैदी प्रतिभू देने की स्थिति में नहीं है वहां न्यायालय को यह परीक्षा करनी चाहिए कि क्या व्यक्ति को व्यक्तिगत बंध-पत्र देने पर छोड़ा जा सकता है । अधिकतम दंडादेश की आधी अवधि पूरी करने के पश्चात्, धन जमानत की वर्तमान प्रणाली और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन उन्मुक्ति के संबंध में यह विचार किया जाना चाहिए कि क्या कई अपराधों में

---

[262] (2015) 13 एस.सी.सी. 603.

[263] 1996 (4) स्केल. 11.

अधिकतम कारावास की दी गई अवधि के अनुसार आधी अवधि पूरी करने के पश्चात् छोड़े जाने से न्याय का प्रयोजन पूरा होता है ।

10.13 इस उपबंध का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए इसके अनुपालन के लिए कुछ कानूनी प्राधिकारियों को उत्तरदायी ठहराना आवश्यक है । विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अधीन जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के सचिव इस प्रकार ऐसे न्यायिक अधिकारी हैं उन्हें इन उपबंधों को प्रभावी बनाने और सुनिश्चित करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए कि फायदे विचाराधीन कैदियों तक पहुंचे । उक्त सचिव कारागार प्राधिकारियों से मिलने और किसी विशि-ट विचाराधीन कैदी द्वारा पूरी की गई निरोध अवधि के बारे में सूचना चाहने के लिए भी सक्षम है । इस प्रकार आयोग यह सिफारिश करता है कि सचिव को इस धारा के उपबंधों के प्रवर्तन के लिए नोडल अधिकारी के रूप में उत्तरदायी ठहराया जाए ।

10.14 **हुसैन और एक अन्य** बनाम **भारत संघ,** 2017 की आपराधिक अपील सं. 509 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ अधीनस्थ न्यायालयों को निदेश जारी करने के लिए उच्च न्यायालयों को निदेश दिया कि जमानत आवेदन-पत्रों का निपटान एक सप्ताह के भीतर किया जाए । न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अनुपूरक के रूप में उसकी भावना के अनुरुप यदि किसी विचाराधीन कैदी ने संभावित दंडादेश यदि दो-ासिद्ध किया जाए, अधिनिर्णीत किए जाने से अधिक अभिरक्षा की अवधि पूरी कर ली है तो ऐसे विचाराधीन कैदी को व्यक्तिगत बंध-पत्र पर छोड़ दिया जाए ।

अध्याय 11

सिफारिशें

11.1 किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का मनमाना कारावास नि-पक्ष प्रशासन की प्रत्येक धारा के प्रतिकूल है अतः ऐसी पद्धतियां जो अनावश्यक और अत्यधिक कारावास से बचाती हैं, को प्रोत्साहित कर, विधि आयोग निम्नलिखित सिफारिशों के माध्यम से जमानत की संवैधानिकतः नि-पक्ष पद्धतियों को संवर्धित करने का प्रयास कर रहा है । ऐसी कोई जमानत पद्धति जिसका परिणाम भुगतान करने की सक्षमता, विचारण के समय हाजिरी सुनिश्चित करने का अनुकल्पी ढ़ंग और अपराध की प्रकृति के बारे में सार्थक विचार के बिना अभियुक्त व्यक्ति का कारावास अभियुक्त के अधिकारों का अतिक्रमण है ।

11.2 संदेह मात्र गिरफ्तारी का तब तक विधिमान्य आधार नहीं हो सकता जब तक संदेह सुआधारित न हो । किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का जमानत का अधिकार जो प्राथमिकतः विचारण पूर्व प्रक्रम पर अभियुक्त व्यक्ति के पक्ष में निर्दो-िता की उपधारणा पर निर्भर होता है, पर समाज और लोक न्याय के प्रतिस्पर्धी हित के विरुद्ध विचार करना चाहिए । जमानत उपबंध की वर्तमान प्रणाली के फायदे स्प-ट हैं : अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से संक्षिप्त अवधि के लिए भी वंचित नहीं किया जाना चाहिए, स्वतंत्रता मानवीय गरिमा के अधिकार का बहुमूल्य घटक है । सतर्कता का प्रयोग किया जाना चाहिए जहां तक गंभीर अपराधों के उन अभियुक्तों के प्रकट मंगलभा-ी चरित्र ठोस वास्तविकता से भ्रमित करते हों । ऐसा अभियुक्त व्यक्ति जो अव्यस्थित रीति में और बाह्य कारणों से न्यायिक प्रणाली और आम समुदाय को खतरा पैदा करता है, को जमानत मंजूर करना समाज को महत्वपूर्ण जोखिम में डालने के समान है । यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि 78 प्रतिशत दो-ासिद्ध व्यक्ति सात व-र्ा और अधिक के कारावास से दंडनीय अपराधों के लिए कारागार में ; जबकि 57 प्रतिशत विचाराधीन कैदी 3-6 मास के औसतन कारावास में हैं ।[264] इस समय गंभीर अपराधों का संपूर्ण अन्वे-ण पूरा करने की आवश्यकता है, अतः इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या अवरोध के बिना जमानत मंजूर करना और राज्य का अपने नागरिकों को संरक्षित करने का हित आगे बंधित होता है जब नागरिक संरक्षण का आधार किसी स्वीकार्य सामाजिक संविदा का मूल तत्व है । ऐसी परिस्थितियों के अधीन जमानत का अधिकार क्यों पूर्ण है, जबकि किसी अभियुक्त द्वारा दो-ी न ठहराए जाने का अधिकार को जमानत नीति संगणना में कोई महत्व नहीं दिया जाता है ।[265] विशुद्धतः इन दो मूल अधिकारों को एक दूसरे के प्रति संतुलित किया जाना चाहिए जब तक यह विश्वास नहीं हो जाए कि राज्य का ऐसे लोगों से जिनसे अपहानि कारित होने की संभावना है से अपने निर्दो-ा नागरिकों को संरक्षित करने का कोई कर्तव्य नहीं है ।[266]

---

[264] पूर्वोक्त टिप्पण 7.

[265] लैरी लाउडान एंड रोनाडल जे. एलन, डेडली डिलमामास-II : जमानत और अपराध, 85 शिकागोकेंट एल. समी. 23 (2010).

[266] -वही-

क. गिरफ्तारी

11.3 उच्चतम न्यायालय ने गिरफ्तारी पर विभिन्न मामलों में कई मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए हैं । **अरनेश कुमार**[267] वाले मामले में न्यायालय ने यह कहा कि गिरफ्तारी आदतन नहीं की जानी चाहिए । यद्यपि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के अधीन गिरफ्तार करने की शक्ति के मनमाने प्रयोग के विरुद्ध सुरक्षोपाय के लिए प्रत्येक एकल मामले में मार्गदर्शक सिद्धांतों को प्रवृत्त करना कठिन हो सकता है, फिर भी यह वांछनीय है कि इस आशय का अतिरिक्त उपाय किया जाए कि मामला डायरी और दैनिक डायरी रजिस्टर में गिरफ्तारी करने के पूर्व अन्वे-नक अधिकारी द्वारा कारण अभिलिखित किया जाएगा और थाना प्रभारी अधिकारी द्वारा लिखित अनुमोदन की भी अपेक्षा होगी । इसके अतिरिक्त, पुलिस अधिकारी को यह सूचना उपलब्ध करानी चाहिए कि अपराध की प्रकृति क्या है और क्या अपराध जमानतीय या अजमानतीय है ?

11.4 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 50 आज्ञापक रूप से गिरफ्तार करने वाले प्राधिकारी से गिरफ्तार व्यक्ति को ऐसे अपराध की पूरी विशि-टियां देने की अपेक्षा होती है जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है या अन्य आधार यदि ऐसी गिरफ्तार के लिए कोई हो । ऐसा आज्ञापक उपबंध तब तक सार्थक नहीं हो सकता जब तक गिरफ्तार व्यक्ति को लिखित में उपरोक्त की सूचना उसके द्वारा समझी जाने वाली भा-ा में नहीं दी जाती । इस प्रकार यह सिफारिश की जाती है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 50 को तदनुसार संशोधित किया जाए ।

ख. व्यतिक्रम या कानूनी जमानत और प्रतिप्रे-ण

11.5 मजिस्ट्रेट के किसी विशे-ा आदेश के अभाव में अन्वे-ण का पूरा न किया जाना अभियुक्त व्यक्ति के निरोध के लिए पर्याप्त हेतुक नहीं समझा जाएगा । पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रे-ण बाध्यकारी कारणों से ही मंजूर किया जाए जब आवेदन में यह दर्शित किया जाए कि यह विश्वास करने का अच्छा कारण है कि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति मामले को स्प-ट करने में उचित रूप से इंगित कर सकता है या अन्यथा पुलिस की सहायता कर सकता है ।[268] प्रतिप्रे-ण के लिए आवेदन करने वाले अधिकारी द्वारा यह सामान्य कथन कि 'अभियुक्त आगे जानकारी देने में समर्थ हो सकता है' स्वीकार नहीं किया जाए । न्यायालयों को कड़ाई से इस नियम को प्रवृत्त करना चाहिए कि अनुपूरक आरोप-पत्र अंतरालों को भरने के लिए नहीं फाइल किया जा सकता किंतु केवल जानकारी जोड़ने के लिए जो बाद में उपलब्ध होता है । इस प्रकार, न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अनुपूरक आरोप-पत्र विचारण को विलंब करने के आशय से नहीं, बल्कि सारवान आनुशंगिक साक्ष्य उपलब्ध कराने के लिए जो अन्वे-ण प्राधिकारियों द्वारा सम्यक् सतर्कता के बावजूद उपलब्ध नहीं हुआ था, फाइल किया जाए ।

---

[267] पूर्वोक्त टिप्पण 79.

[268] राज्य बनाम मेहर सिंह और अन्य, 1974 क्रि. ला. जे. 970.

11.6 प्रतिप्रे-ण के संबंध में, यह ध्यान में आया है कि व्यवहार में, मजिस्ट्रेट नैमित्तिक और सामान्य रीति से निरोध प्राधिकृत करते हैं । मजिस्ट्रेट को उस मामला डायरी की परीक्षा और जांच करनी चाहिए जो प्रतिप्रे-ण के समय उसके समक्ष प्रस्तुत की गई है । कुछ उच्च न्यायालयों में अभियुक्त व्यक्तियों को अभिरक्षा में प्रतिप्रेि-त करने के संबंध में नियम विरचित किए हैं जिन्हें एकरूपता और संगतता के लिए व्यापक स्वीकृति प्रदान की जानी चाहिए । दिल्ली उच्च न्यायालय नियम जिल्द 3 अध्याय 11 भाग-ख ; अधिक विनिर्दि-टतः नियम 3, 4, 5, 6, 7, 8, 10 का प्रतिनिर्देश किया जा सकता है । एक अन्य चिंता यह है कि विरचित मार्गदर्शक सिद्धांतों और कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा बनाए गए कुछ नियमों के बावजूद जमानत की मंजूरी के संबंध में अपर्याप्त पूर्विक्ता दी जाती है । दिल्ली उच्च न्यायालय नियम के जिल्द 3 अध्याय 10 का प्रतिनिर्देश किया जा सकता है जहां सुसंगत नियम 1, 2, 3, 4, 5, 7, 9, 15, 16 को संहिता के उपबंधों में सम्मिलित किया जाए । पूर्वोक्त के सुसंगत भाग को उपाबंध 1 के रूप में उपाबद्ध किया गया है ।

11.7 विचारणों के निपटान में किया जाने वाला लंबा समय देश में विचाराधीन कैदियों की समस्या को और बदतर बनाता है । जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309(1) यह निदेश देता है कि ''प्रत्येक जांच या विचारण में कार्यवाही यथा संभव शीघ्रता से की जाएगी और विशि-टतः जब साक्षियों की परीक्षा एक बार आरंभ हो जाती है तो वह सभी हाजिर साक्षियों की परीक्षा हो जाने तक दिन प्रतिदिन जारी रखी जाएगी, जब तक कि ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, न्यायालय अगले दिन से परे के लिए उसे स्थगित करना आवश्यक न समझे ।'' वस्तुतः देश के विचारण न्यायालय काम से बोझिल हैं और दिन प्रतिदिन के आधार पर विचारणों का शीघ्रता से निपटान नहीं कर सकते ।

11.8 आगे, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309(2) के संबंध में, यह उपबंध न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लेने के पश्चात् अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के प्रतिप्रे-ण के बारे में है । जहां विचारण मुल्तवी या स्थगित किया जाता है वहां न्यायालय ऐसे अभियुक्त को प्रतिप्रेि-त कर सकेगा यदि वह अभिरक्षा में है । उपबंध में यह उल्लेख नहीं है कि मजिस्ट्रेट अभिरक्षा से व्यक्ति को छोड़ भी सकेगा । परिणामतः यह प्रतीत होता है कि धारा में यह सुझाव है कि उपबंध के अधीन प्रतिप्रे-ण केवल एक परिणाम है । यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रतिप्रे-ण यंत्रवत रीति से न किया जाए, न्यायालय को अभिरक्षा में व्यक्ति के बने रहने की सतत आवश्यकता यदि कोई है और उसके द्वारा विचाराधीन के रूप में कारावास में भोगी गई अवधि दोनों पर यह अवधारित करने के लिए विचार किया जाए कि क्या व्यक्ति को छोड़ा जाए या प्रतिप्रेि-त किया जाए । यह स्प-ट करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309(2) में इस आशय के संशोधन का उपबंध किया जाए कि विचारण के मुल्तवी या स्थगन पर न्यायालय यदि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति अभिरक्षा में है ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ेगा या लेखबद्ध कारणों से ऐसे अभियुक्त को आगे अभिरक्षा में प्रतिप्रेि-त करेगा । विशे-ा विधियों में, अन्वे-क अभिकरणों को न्यायालय को प्रत्येक प्रतिप्रे-ण सुनवाई पर अन्वे-ण की प्रास्थिति के बारे में लगातार नवीनतम

जानकारी देते रहना चाहिए । कुछ अपराधों की जटिल प्रकृति को मान्यता प्रदान करते हुए अन्वे-नक अभिकरण अन्वे-षण के लिए और अधिक समय की अपेक्षा कर सकते हैं अतः यह आवश्यक है कि न्यायालयों में विवेकाधिकार निहित किया जाए । तथापि, यदि न्यायालय इस नि-क-र्ा पर पहुंचता है कि अन्वे-षण में विलंब अन्वे-षणाधीन मामले की प्रकृति द्वारा कारित नहीं है बल्कि अन्वे-नक अभिकरण के कारण हुई है तो न्यायालय को जमानत पर अभियुक्त व्यक्ति को छोड़े जाने पर विचार करना चाहिए ।

11.9 इसके अतिरिक्त, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के संबंध में प्रतिप्रे-षण के संबंध में निम्नलिखित कारकों पर विचार किया जाए ;

(क) मजिस्ट्रेट के विशे-ा आदेश के अभाव में अन्वे-षण का पूरा न किए जाने को अभियुक्त व्यक्ति के सतत निरोध के लिए पर्याप्त कारण नहीं समझा जाएगा ।

(ख) वास्तविक आवश्यकता के मामलों में ही पुलिस अभिरक्षा को प्रतिप्रे-षण मंजूर किया जाए और जब आवेदन में यह दर्शित किया जाए कि यह विश्वास करने का अच्छा कारण है कि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति उचित रूप से इंगित कर सकता है या अन्यथा मामले को सुलझाने में पुलिस की सहायता कर सकता है ।[269] प्रतिप्रे-षण के लिए आवेदन करने वाले अधिकारी द्वारा यह सामान्य कथन कि अभियुक्त आगे जानकारी देने और अन्वे-षण की सहायता करने में समर्थ हो सकेगा, प्रतिप्रे-षण के अनुरोध के लिए पर्याप्त कारण नहीं समझा जा सकता ।

(ग) मजिस्ट्रेट उस मामला डायरी की गहनता से परीक्षा करेगा जो प्रतिप्रे-षण के आवेदन के समय उसके समक्ष रखी गई है ।

(घ) ऐसी अवधि जिसके लिए अपराध का अभियुक्त व्यक्ति पुलिस की वास्तविक/ शारीरिक अभिरक्षा (अर्थात् अस्पताल में भर्ती) में नहीं है, विहित समय से अपवर्जित किया जाए ।

ग. ऐसी शर्तें जो जमानत पर अधिरोपित की जा सकती हैं

11.10 जमानत शर्त का संविधान द्वारा गारंटीकृत अधिकारों का अयुक्तियुक्त अतिक्रमण करने वाला नहीं होना चाहिए । यदि यह अभियोजन साक्ष्य के माध्यम से यह साबित नहीं कर सकता है कि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति फरार हो सकता है या न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप कर सकता है या वही अपराध कर सकता है तो अभियुक्त व्यक्ति को वित्तीय बाध्यताओं जो अत्यधिक या दुर्भर न हो के बिना या सहित छोड़े जाने के लिए पात्र समझा जाना चाहिए । न्यायालय को प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति की अनुपम परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए तरीके विकसित करने चाहिए कि जमानत शर्तें प्रभावी हों । उदाहरणार्थ यदि अभियुक्त व्यक्ति वृत्ति से चालक है तो अपराध जिसका वह दो-ी है उसके कार्य से

[269] -वही-

संबंधित नहीं है तो न्यायालय उन्मुक्ति की पूर्व शर्त के रूप में उसका चालन अनुज्ञप्ति जमा करने की उससे अपेक्षा कर सकेगा । व्यक्तिगत धनीय बंध-पत्र के नि-पादन या प्रतिभुओं के माध्यम से वित्तीय बाध्यताओं की अपेक्षा अंतिम अवलंब होना चाहिए जब कोई अन्य तरीका व्यवहार्य न हो । यदि न्यायालय पहचान-पत्र, अनुज्ञप्ति या अन्य दस्तावेज के निक्षेप की ईप्सा करता है तो वह अभियुक्त व्यक्ति को यह प्रमाणित करते हुए दस्तावेज की सत्यापित प्रति उपलब्ध कराएगा कि मूल प्रति न्यायालय में निक्षेपित है । ऐसे सत्यापित प्रतियों को राज्य फायदे आदि प्राप्त करने के लिए पहचान की सबूत के रूप में उपयोग करने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए ।

11.11 यह अवधारित करने के लिए कि क्या व्यक्ति के फरार होने की संभावना है, न्यायालय को धनीय विचारों से भिन्न अन्य कारकों पर ध्यान देना चाहिए जो कुटुम्ब की हाजिरी, काम-धंधा, समुदाय आदि में अन्य जड़ें जैसी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर अपराध का अभियुक्त व्यक्ति रखता है । तथापि, अभियुक्त व्यक्ति को मात्र इस कारण जमानत से इनकार नहीं किया जाना चाहिए कि वह गिरफ्तार शहर में प्रवासी है और स्थानीय समुदाय से संबंध नहीं रखता । ऐसे व्यक्ति की हाजिरी अन्य साधनों के माध्यम से प्रवृत्त की जा सकेगी उदाहरणार्थ अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के सामान निवास स्थल के पुलिस को सूचित कर कि ऐसा अभियुक्त जमानत पर है और यदि उसे उसके गृह जिले में रखा जाता है तो यह जांच की जाए कि क्या वह अपनी जमानत शर्तों का पालन कर रहा है ।

11.12 यदि मजिस्ट्रेट की यह राय है कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के फरार होने की आंशका है तो प्रतिभू अधिरोपित की जाए । प्रतिभू व्यक्तिगत प्रतिभू या तृतीय व्यक्ति प्रतिभू हो सकेगा और अभियुक्त व्यक्ति की भुगतान करने की क्षमता के अनुसार होना चाहिए । जमानत की शर्तें अवधारित करते समय न्यायालय को अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की वित्तीय हैसियत पर ध्यान देना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जमानत की शर्तें अत्यधिक या असम्यक् दुर्भर नहीं है । प्रतिभुओं को एकमात्र इस आधार पर नामंजूर नहीं किया जाना चाहिए कि वे स्थानीय स्थित व्यक्ति नहीं है । समपहरण की दशा में प्रतिभुओं की उपलब्धता से संबंधित चिंताओं को दूर करने के लिए, न्यायालय को यह निदेश देने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए कि प्रतिभू कागज ऐसे न्यायालय के पास निक्षेपित किए जाएं जिसके पास अधिकारिता है और जहां प्रतिभू अवस्थित है और यह कि ऐसा न्यायालय समपहरण की दशा में प्रतिभू के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है ।

11.13 ऐसी कुछ शर्तें जो अधिरोपित की जाएं इस प्रकार हैं :–

- व्यक्तिगत संगम, निवास या यात्रा स्थल पर विनिर्दि-ट निर्बंधन का पालन ;
- अपराध के अभिकथित पीड़ित और संभाव्य साक्षी जिनका परीक्षण अपराध के समय में किया जाना है से सभी प्रकार के संपर्क से बचें ;
- अभिहित विधि प्रवर्तन अभिकरण को नियमित आधार पर रिपोर्ट करें ;

• कब्जे में रखने से बचें और यदि कोई आयुध, गोला-बारूद, विध्वंशकारी उपकरण या अन्य खतरनाक हथियार कब्जे में है तो अभ्यर्पित करें ;

• उपलब्ध चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक या मनोचिकित्सा उपचार प्राप्त करें और किसी विनिर्दि-ट संस्था में रहें यदि उस प्रयोजन के लिए अपेक्षित है ;

• किसी अन्य शर्त को पूरा करें जो यथापेक्षित व्यक्ति की हाजिरी सुनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्ततः आवश्यक है और किसी अन्य व्यक्ति या समुदाय की सुरक्षा सुनिश्चित करें ;

• अभियुक्त के कब्जे वाले पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज को अभ्यर्पित करें यदि अभियुक्त के पास कोई नहीं है तो उसे अभिप्राप्त करने से प्रतिनिद्ध किया जाए ;

• अभियुक्त को नियोजन चाहने या बनाए रखने या किसी शैक्षिक कार्यक्रम में प्रवेश करने का अधिदेश दिया जाए ;

• ऐसे परिसर या किसी अन्य स्थान में जाने से विरत किया जाए जैसा न्यायालय विनिर्दि-ट करें ;

• यात्रा या संचरण पर किसी निर्बंधन का पालन किया जाए ; या

• वाक् और अभिव्यक्ति पर विनिर्दि-ट निर्बंधन का पालन किया जाए ।

11.14 यह सूची विस्तारी नहीं है, उपरोक्त शर्तों में से किसी एक शर्त या इसके संयोजन को न्यायालय द्वारा अधिरोपित किया जा सकेगा । जमानत अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की हाजिरी सुनिश्चित करने की न्यूनतम निर्बंधन शर्तों और समुदाय की सुरक्षा के अधीन रहते हुए मंजूर की जाए ।

11.15 विचारण पूर्व निरोध की शर्तों या निर्बंधनों की विधिमान्यता जो विधि की सम्यक् प्रक्रिया के बिना स्वतंत्रता के वंचन के विरुद्ध केवल संरक्षण को आलिप्त करता है, का मूल्यांकन करते हुए, मामलों में उचित जांच की जाए कि क्या वे शर्तें या निर्बंधन निरुद्ध व्यक्ति के लिए दंड के समान हैं ।[270] विधि और व्यवस्था, शांति और सार्वजनिक सुरक्षा का अनुरक्षण सुनिश्चित करना राज्य के विधिमान्य उद्देश्य हैं जो जमानत पर छूटे अभियुक्त व्यक्ति को मंजूर की गई स्वतंत्रता पर निर्बंधनों के अधिरोपण को कभी-कभी न्यायोचित ठहराते हैं ।

घ. अनुसूची 1 में वर्गीकरण का उपांतरण

11.16 भारतीय दंड संहिता अपराधों के लिए दंड का उपबंध करती है किंतु यह दंड प्रक्रिया संहिता है जो अपराधों को 'संज्ञेय' और 'असंज्ञेय', 'जमानतीय' और 'अजमानतीय' के रूप में वर्गीकृत करता है और यह अवधारित करता है कि कौन सा न्यायालय अपराध का विचारण करेगा । इस प्रकार अधिकतम दंड के साथ जमानतीय/अजमानतीय के रूप में कतिपय

[270] बेल्ल बनाम वोल्फीश, 441 यू. एस. 520 (1979).

अपराधों के वर्गीकरण के बीच कोई प्रकट सह-संबंध नहीं है जो उनके करने पर अधिरोपित किया जाए । उदाहणार्थ - किसी विवाहित महिला के साथ क्रूरता करता तीन व-र्ा के कारावास से दंडनीय है (भारतीय दंड संहिता, धारा 498क) और अजमानतीय है जबकि जारकर्म का अपराध करना पांच व-र्ा तक के कारावास से दंडनीय है (भारतीय दंड संहिता की धारा 497) और जमानतीय हैं । अपराध की गंभीरता, अधिकतम अवधि, जिसके द्वारा यह दंडनीय है और जमानतीय/अजमानतीय के रूप में अपराध के वर्गीकरण दोनों में प्रतिबिम्बित होनी चाहिए । विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि अपराधों के लिए कारावास की अवधि और जमानतीय/अजमानतीय के रूप में उनके वर्गीकरण के बीच संगतता होनी चाहिए ।

ङ. अग्रिम जमानत

11.17 स्वतंत्रता के वनिस्वत अभिरक्षा के मुद्दे को ऐसे राज्यों के संदर्भ में स्थिर किया गया है जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के उपबंध लागू नहीं होते । **कुमारी हेमा मिश्र** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[271] वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन गिरफ्तारी पर रोक की शक्ति को कायम रखते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि पुलिस अभिरक्षा को प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा को कायम रखते हुए और राज्य के विधि और व्यवस्था को बनाए रखने के उद्देश्य को जोखिम में डाले बिना स्वतंत्रता के अधिकार की चौकसी से रक्षा करने के बीच संतुलन बनाए रखना चाहिए । इसी प्रकार, **मनुभाई रतीलाल पटेल** बनाम **गुजरात राज्य**[272] वाले मामले में यह प्रश्न कि क्या बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण की जा सकती है जहां किसी व्यक्ति को सक्षम न्यायालय द्वारा आदेश द्वारा न्यायिक अभिरक्षा या पुलिस अभिरक्षा में सुपूर्द किया गया है जो प्रथमदृ-ट्या यंत्रवत, अवैध या अधिकारिता विहीन होना प्रतीत नहीं होता, जिस पर विचार किया जाए । ऐसे मामलों में न्यायालय से निरोध की वैधता की संवीक्षा करने की अपेक्षा । जब तक आदेश अधिकारिता की कमी के दो-न या पूर्ण अवैधता से ग्रस्त नहीं है, बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट मंजूर नहीं की जा सकती ।

11.18 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के परंतुक को प्रतिधारित किया जाए ; यह विधि आयोग की 203वीं रिपोर्ट में दिए गए सुझावों के प्रतिकूल है ।[273] परंतुक को प्रतिधारित किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि जहां अपराध गंभीर और अजमानतीय है यह समय के भीतर जब तक ऐसा अभियुक्त आवेदन नहीं करता और न्यायालय कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं करता या आवेदन खारिज नहीं करता, अभियुक्त व्यक्ति की तत्काल गिरफ्तारी को सुकर बनाता है । अग्रिम जमानत एक असाधारण विशे-ाधिकार है और उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए मंजूर किया जाना चाहिए । न्यायालयों को इस विशे-ाधिकार का उपयोग करने में परम सतर्कता का प्रयोग करना चाहिए और यंत्रवत या

---

[271] (2014) 4 एस.सी.सी. 453.

[272] (2013) 1 एस.सी.सी. 314.

[273] भारत के अठारहवीं विधि आयोग द्वारा 203वें रिपोर्ट, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438, जो कि भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 2005 (अग्रिम जमानत) द्वारा संशोधित किया गया ।

असावधानीपूर्वक अग्रिम जमानत मंजूर नहीं करना चाहिए । कई व-र्गों से, अग्रिम जमानत का दुरुपयोग अन्वे-ाण को तितर-बितर करने और न्याय प्रक्रिया को बाधित करने के लिए किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किया जा रहा है । यह मानते हुए कि उपबंध का दुरुपयोग बढ़ गया है ऐसे समय पर यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि विधान का आशय निर्दो-ा व्यक्ति को अनावश्यक रूप से तंग किए जाने से संरक्षित करना है ।

11.19 विधि आयोग की यह राय है कि अग्रिम जमानत की मंजूरी न केवल सतर्कता से की जाए बल्कि समय की सीमित अवधि के लिए प्रवर्तनकारी बनाया जाए । इसके अतिरिक्त, विशे-ा स्थिति में कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 संहिता में बनी हुई है और दुरुपयोग की संभाव्यता रखती है, इसलिए इस धारा के अधीन पारित किसी आदेश के साथ अग्रिम जमानत खारिज करने या मंजूर करने के कारण होने चाहिए ।

च. आर्थिक अपराधों में जमानत

11.20 ऐसा देश जिसमें आर्थिक अपराधों की अधिक घटनाएं हैं, सरकार और नौकरशाही को भ्र-ट और कमजोर भी देखा जाता है ।[274] भारत ऐसे प्रतिभास का कोई अपवाद नहीं है । मुद्रा का जाली होना, वित्तीय घोटाले, कपट, धनशोधन आदि जैसे आर्थिक अपराध ऐसे अपराध हैं जो रा-ट्र की सुरक्षा और सुशासन को जोखिम में डालते हैं । इसके अतिरिक्त ऐसे अपराधों द्वारा अर्जित की गई काले धन का विपथन और विनिधान अन्य तरह के अपराध सृजित करते हैं और आपराधिक संघ के नेता शासन करते हैं । इस प्रकार यह ऐसा दू-ित समूह गठित करता है जो सार्वजनिक सुरक्षा और आकस्मिकतः रा-ट्रीय सुरक्षा को खतरा पैदा करता है जो अंतिम परिणाम के रूप में आसन्न प्रतीत होता है ।[275] कूटरचित मुद्रा, काला धन आदि के परिचालन जैसे विभिन्न घोटालों के आलोक में, ऐसे आर्थिक अपराधों के लिए जमानत की मंजूरी या इनकारी के प्रति सोच में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है क्योंकि ऐसे अपराधों की विभी-िका से प्रभावी रूप से निपटने के लिए आवश्यक हैं । ऐसे सभी प्रकार के आर्थिक अपराध जिसमें कर प्रवंचना, सीमा शुल्क अपराध या बैंक कपट सम्मिलित हैं, से कड़ाई से निपटा जाना चाहिए और जमानत मंजूर करने या इनकार करने के प्रयोजन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता या समुचित विशे-ा कानूनों में ऐसे अपराधों में निर्बंधित जमानत के लिए उपबंध सम्मिलित किया जाए । भारतीय दंड संहिता में अपराधों का कोई वर्गीकरण नहीं है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क में यह उपबंध है कि अजामनतीय अपराध के मामले में कब जमानत दी जा सकती है । इसी प्रकार, आर्थिक अपराधों में जमानत मंजूर करने के प्रश्न पर अपराध की प्रकृति और गंभीरता, घोटाले का प्रतिकूल प्रभाव और अंतर्वलित धन का विस्तार निश्चायक कारक होंगे । अतः, विधि आयोग ने यह सुझाव दिया कि आर्थिक अपराधों में जमानत पर विभिन्नतः बर्ताव किया जाए ।

छ. विशे-ा विधियां

---

[274] वी. के. सिंह, ''आर्थिक अपराध और भारतीय अर्थव्यवस्था पर उनका प्रभाव'' का आयोजक (2017).

[275] -वही-

11.21 विशे-न विधियों में जमानत उपबंध कठोर हैं क्योंकि इन विधानों के अधीन व्यवर्हित अपराध गंभीर हैं और आम जनता पर ऐसे अपराधों की प्रकृति और प्रभाव पर विचार करते हुए विधि में इन विधियों के अधीन जमानत के लिए कठोर संवीक्षा का उपबंध किया जाना चाहिए । उदाहरणार्थ, एन. डी. पी. एस. अधिनियम के अधीन सभी मुख्य अपराध अजमानतीय हैं फिर भी तकनीकी आधारों पर न्यायालयों द्वारा अपराधियों को प्रायः जमानत मंजूर की जाती हैं ।[276] इस खतरे से निपटने के लिए, एन. डी. पी. एस. अधिनियम विशे-ाकर वाणिज्यिक मात्रा वाले मामलों में अशर्त जमानत मंजूर नहीं किया जाना चाहिए । आतंकवाद संबंधी मामलों के संबंध में, उच्च स्तरीय संवीक्षा का प्रयोग किया जाना चाहिए । यह उच्च स्तरीय संवीक्षा जमानत के अपवाद के रूप में विधि द्वारा विहित है जहां अभियुक्त व्यक्ति समाज की सुरक्षा को खतरे में डाल सकता हो । अन्य लोगों के प्रति हिंसा की मात्रा अभियुक्त के विरुद्ध ऐसे आरोप में निहित हैं । उस विशि-ट प्रकृति के अपराध की बारंबारता पर भी विचार किया जाना चाहिए जहां ऐसे अपराध अभिकथित किए गए हैं । यह उल्लेखनीय है कि आस्ट्रेलियन प्राधिकरण ने आतंकवाद विरोधी अधिनियम, 2004 और जमानत संशोधन (आतंकवाद) अधिनियम, 2004 अधिनियमित किया जिसका प्रभाव आतंकवाद मामलों में जमानत के पक्ष में उपधारणा को प्रतिवर्ती था ।[277] संशोधन में यह उपबंध है कि जहां किसी व्यक्ति को कतिपय आतंकवाद अपराधों से आरोपित किया जाता है वहां जमानत तब तक मंजूर नहीं किया जाना चाहिए जब तक जमानत प्राधिकारी का यह समाधान न हो जाए कि जमानत मंजूर करने को उचित ठहराने के लिए आपवादिक परिस्थितियां विद्यमान हैं ।[278]

ज. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 और 436क के उपांतरण की आवश्यकता

11.22 धारा की भा-ा को यह संसूचित करने के लिए असंदिग्ध बनाया जाना चाहिए कि इस धारा के अधीन जमानत एक अधिकार का वि-नय है जिसे अयुक्तिसंगत या अत्यधिक प्रतिभू अधिरोपित करते हुए या मांग करते हुए, छीना नहीं जा सकता । चूंकि संहिता में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 440 में वर्णित प्रतिभू से भिन्न प्रतिभुओं का विनिश्चय करने के लिए किसी मानक का उपबंध नहीं है जिसमें यह उल्लेख है कि प्रतिभू मामले की परिस्थितियों का सम्यक् ध्यान रखकर नियत की जाए जो अत्यधिक न हो । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 और 437 इस उपबंध के अनुरुप पढ़ा जाए ।

---

[276] एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 में संशोधन करने की मांग करते हुए, स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी पदार्थ (संशोधन) विधेयक, 1988 के उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह स्वीकार किया गया कि ''भले ही बड़े अपराध दंड के स्तर के आधार पर गैर जमानती है लेकिन तकनीकी आधार ओ-धि अपराधियों को जमानत पर रिहा किया जा रहा था ।''

[277] एस. ओमंडी, ''केन्या में आतंकवादी खतरों और हमलों के संदर्भ में जमानत के लिए संवैधानिक अधिकार और राज्य सुरक्षा को संतुलित करना'' 3(2) मानविकी और सामाजिक विज्ञान में अनुसंधान जनरल 23-44 (2015).

[278] -वही-

11.23 न्यायपालिका या अन्वे-नक प्राधिकारियों द्वारा विलंब की माफी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के अधिकारों पर नहीं की जा सकती । विलंब और ऐसी कठिनाइयां जो न्यायाधीश इस समय झेल रहे हैं के कुछ कारण थे जिसके लिए विधि का संशोधन किया गया फिर भी धारा में वर्णित अधिक वर्जन प्रयोजन को विफल करता है । हाल ही में, उच्चतम न्यायालय ने **भीम सिंह**[279] वाले मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क की व्याप्ति पर विचार करते हुए न्यायिक अधिकारियों से ऐसे विचाराधीन कैदियों की पहचान करने का निदेश दिया जो आधी अवधि पूरी कर चुके हैं, यदि वे दो-ी पाए जाते और दंडित किए जाते । आगे यह निदेश दिया गया कि 'स्वयं ऐसे विचाराधीन कैदी जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क की अपेक्षा को पूरा करते हों, को तत्काल उनके छोड़े जाने के लिए' कारागार में समुचित आदेश पारित किया जाए ।[280] **भीम सिंह**[281] वाले मामले के निदेशों को विचाराधीन कैदियों के छोड़े जाने के लिए मानदंड विहित कर धारा को संशोधित करते हुए कार्यान्वित किया जाए । सात व-र्ा तक के अपराधों के विचाराधीन कैदी जिन्होंने अधिरोपित अधिकतम दंडादेश की एक तिहाई अवधि पूरी कर ली है, छोड़ दिया जाए ; जबकि सात व-र्ा से अधिक दंड के अपराधों के लिए ऐसे विचाराधीन कैदी जिन्होंने अधिरोपित अधिकतम दंडादेश की आधी अवधि पूरी कर ली है, छोड़ दिया जाए । इसके अतिरिक्त, छूट पर विचार करते हुए भोगे गए भाग का उपबंध किया जाए । उच्चतम न्यायालय ने कई मामले में यह मत व्यक्त किया है कि कारागार में विचाराधीन कैदियों को कठोर अपराधियों के साथ रखने से अपराध के अभियुक्त व्यक्ति प्रभावित होंगे या असम्यक् आपराधिक प्रवृत्ति बढ़ेगी ।

झ. केंद्रीय आसूचना डाटाबेस और इलेक्ट्रानिक टैगिंग की आवश्यकता

11.24 भारत में आपराधिक न्याय प्रणाली आपराधिक आंकड़ा एकत्र करने, आंकड़ा विश्ले-ाण और आंकड़ा साझा करने की क्षमता बढ़ाने में अग्रसर है । यद्यपि आपराधिक पूर्ववृत्त का पता प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और निर्णयों के अभिलेख के माध्यम से लगाया जा सकता है जिसमें से दोनों ऑनलाइन प्राप्त किए जा सकते हैं तथापि, जानकारी टुकड़ों में है और आसानी से प्राप्य नहीं है । उदाहरणार्थ, न्यायालय, अभियोजक और पुलिस उन्हें यथाशीघ्र और दक्षतापूर्वक कार्यवाही आरंभ करने में समर्थ बनाने के लिए अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के बारे में त्रिकोणीय जानकारी पाने में समर्थ होना चाहिए ।

11.25 अपराध और अपराधी ट्रैकिंग नेटवर्क और प्रणाली की तकनीकी वास्तु-शिल्प (सी. सी. टी. एन. एस.) स्कीम यह सुनिश्चित करने के लिए अपनाई जाए और उपयोग किया जाए कि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति अपनी हाजिरी, अपना चित्र और/या अपना अंगुल छाप, नाम, पिता का नाम, माता का नाम, पति/पत्नी का नाम, पता, जन्मतिथि, मोबाईल नंबर, संपर्क नंबर,

---

[279] पूर्वोक्त टिप्पण 262.

[280] सुश्री दिव्या अय्यर बनाम तिहार जेल (http://www.rti.india.gov.in/cic_decisions/CIC_SA_A_2015_000375_M_ 161809.pdf) (अंतिम बार 16 मई, 2016 को देखा) .

[281] पूर्वोक्त टिप्पण 262.

चालन अनुज्ञप्ति, वोटर आई.डी., आधार नंबर और आपराधिक इतिहास यदि कोई है, चिह्नित करे । दिल्ली उच्च न्यायालय ने पहले केंद्रीय अन्वे-ण ब्यूरो से अपरहणकर्ताओं और व्यपहरणकर्ताओं के आपराधिक अभिलेखों का सेल बनाने का निदेश दिया है । इस तरह के न्यायिकेतर विकास का उपयोग रा-ट्रीय आपराधिक डाटाबेस, विभिन्न अन्वे-ण अभिकरण और न्यायपालिका लिंक गठित कर प्रेरक के रूप में किया जाए । उन लिंकों को विभिन्न राज्यों और रा-ट्रीय प्राधिकारियों द्वारा सुकर बनाकर गृहमंत्रालय के सक्रिय योगदान की मांग की जाए ।[282] ऐसी रीति से, यह न्यायालयों, लोक अभियोजकों, अन्वे-ण अभिकरणों और विभिन्न अन्य प्राधिकरणों जो विधि को कायम रखने में मुख्य कार्य करते हैं और न्याय प्रदान करते हैं, के विनिश्चय करने के उनके कृत्य में सहायक होगा ।

11.26 इलेक्ट्रानिक टैगिंग में अस्थायी दर (प्रतिवादी को आसानी से अवस्थित अनुज्ञात करते हुए) और सरकारी व्यय (राज्य खर्च पर अवरुद्ध प्रतिवादियों की संख्या घटाकर) दोनों को कम करने की क्षमता है ।[283] इलेक्ट्रानिक टैंगिंग या मानीटरिंग को न्यूजीलैंड के विधान में परिभा-ित किया गया है । इसमें यह उल्लेख है कि, ''इलेक्ट्रानिकली मानीटर जमानत (ई. एम. जमानत) जमानत का एक निर्बंधित रूप है । ई. एम. जमानत पर व्यक्ति को हर समय विनिर्दि-ट निवास पर बना रहना चाहिए जब तक अनुमोदित प्रयोजन (रोजगार) के लिए छोड़ने की विशे-न अनुज्ञा नहीं दी जाती है । अनुपालन की मानीटरिंग इलेक्ट्रानिकली मानीटर एंकलेट द्वारा की जाती है जिसे दिन में 24 घंटे पहने रहना होता है ..... ई. एम. जमानत ऐसे उपयुक्त प्रतिवादियों और नवयुवकों (12 - 17 व-र् की आयु) के लिए न्यूजीलैंड में उपलब्ध है जो अन्यथा कारागार में अभिरक्षा में बने रहते या नवयुवकों की दशा में युवक निवास में जब वे न्यायालय की सुनवाई की प्रतीक्षा करते हैं । प्रतिवादी और नवयुवक को तब तक निर्दो-न माना जाता है जब तक वे विचारण में दो-ी नहीं पाए जाते ।''[284]

11.27 इलेक्ट्रानिक मानीटरी प्रणाली का संवैधानिक अधिकार पर गंभीर और महत्वपूर्ण प्रभाव है और विधि आयोग की यह राय है कि ऐसी प्रणाली का यदि उपयोग किया जाए तो उच्च स्तर की सतर्कता के साथ कार्यान्वित किया जाए । ऐसी मानीटरिंग का उपयोग घोर और गंभीर अपराधों में ही किया जाए जहां अभियुक्त व्यक्ति को समान अपराधों में पहले दो-नसिद्ध किया गया है । यह घोर अपराधियों को इलेक्ट्रानिक टैगिंग के आवेदन को निर्बंधित करते हुए समुचित विधानों में संशोधन कर किया जा सकता है और विनिर्दि-ट विधान के अधीन किसी न्यायालय के आदेश में इसके कारण अंतर्वि-ट होने चाहिए ।

---

[282] नायर और सेन, महिलाओं और बच्चों की तस्करी, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2005 पैरा 308.

[283] वाइसमैन,विचारण पूर्व निरोध और मानीटर किए जाने का अधिकार, येल लॉ जर्नल, 2014,वॉल्यू. 123 अंक सं.5.

[284] न्यायालय और सजा पूर्व (http://www.corrections.govt.nz, 2017) <http://www.corrections.govt.nz/ /courts_and_pre-sentencing/em_bail.html> 15, 2017 को देखा गया. बहामास जैसे विभिन्न राज्य, संयुक्त राज्य अमेरिका ने इलेक्ट्रॉनिक मानीटरिंग सिस्टम पर काम शुरू किया ।

ञ. लोक अभियोजक और पीड़ित

11.28 भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में लोक अभियोजक को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के चौथे परंतु के माध्यम से सुनवाई का अवसर दिया गया है । इसी प्रकार कतिपय मामलों में जहां अपराध सात व-र्ा या अधिक से दंडनीय है, पीड़ित को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए । जमानत कार्यवाहियों विशे-कर यदि अभिकथित अपराधी से पीड़ित को संरक्षित करने के लिए कतिपय शर्त अधिरोपित किया गया है, के परिणाम की सूचना पीड़ित को दिए जाने के लिए उपबंध किया जाना चाहिए ।[285] सिद्धांतों में से एक सिद्धांत जो जमानत को लागू होना चाहिए वह 'पीड़ितों के साथ बर्ताव' है, विशे-कर जहां यह ज्ञात है कि पीड़ित, जिसने अपराधी से संरक्षण की आवश्यकता के बारे में व्यक्त चिंता व्यक्त की है को अभिरक्षा से अपराधी के आसन्न उन्मुक्त के बारे में बताया जाना चाहिए ।[286] इस प्रकार, यह सुझाव दिया जाता है कि कतिपय जघन्य और गंभीर अपराधों में अभियोजक से, पीड़ित से परामर्श करने के पश्चात् 'पीड़ित प्रभाव निर्धारण' रिपोर्ट प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाए जिसमें अपराध के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक प्रभाव पर जानकारी के साथ-साथ पीड़ित की किसी चिंता और जमानत के पीड़ित पर प्रभाव का संक्षेप में उल्लेख किया जाए ।

11.29 आगे, यू. के. में अपनाए गए जांच सूची मॉडल को भारतीय अभियोजन विभाग में अपनाया जाए । प्रणाली में स्प-ट रूप से जमानत मंजूर करने में अभियोजनीय स्वविवेक प्रयोग करने के लिए सभी आवश्यक सुसंगत ब्यौरे उपलब्ध हैं । यह गिरफ्तार व्यक्ति का इतिहास, आशय, ईप्सा का साक्ष्य और अन्य सुसंगत कारक जैसे सुभिन्न आंकड़ा सूचीबद्ध करता है । प्रणाली न केवल स्वयं कार्यवाही में दक्षपूर्ण साबित होगी बल्कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति और राज्य के हितों में संतुलन बनाए रखने के आशय को संवर्धित करने को अपने कर्तव्य के भी पालन में तत्पर होगी ।

ट. जोखिम निर्धारण

11.30 विचारणपूर्व जोखिम निर्धारण विचारणपूर्व प्रतिवादी और उसके विनिर्दि-ट परिस्थितियों से संबंधित जोखिम के गुणात्मक मूल्य का अवधारण है ।[287] जोखिम प्रबंध का अभिप्राय प्रभावी पर्यवेक्षण और रणनीतिक हस्तक्षेप का उपयोग कर प्रतिवादी को होने वाले जोखिम के साथ प्रतिवादी के संवैधानिक अधिकारों का संतुलन बनाए रखना है ।[288] जोखिम निर्धारण प्रक्रिया में गिरफ्तार अभियुक्त को थाने में लाया जाता है जहां पहचान, रजिस्ट्रीकरण, तलाशी, पूछताछ और अंगूली छाप के पश्चात् समुदाय से संबद्ध का अन्वे-ण अवधारणपूर्व कारकों के साथ किया जाता है । यदि प्रतिवादी को अच्छे जोखिम वाला पाया जाता है तो अधिकारी

---

[285] ऑस्ट्रेलियाई विधि सुधार आयोग, ''जमानत और पारिवारिक हिंसा पर रिपोर्ट'' 114.

[286] -वही-

[287] सी. मैकमिलियन सी., स्टेट ऑफ द साइंस ऑफ प्रेट्रियल रिक्स आकलन (प्रेट्रियल जस्टिस इंस्टीट्यूट 2011).

[288] -वही-

प्रतिभू सहित या रहित व्यक्तिगत बंध-पत्र पर उसे छोड़ने के लिए प्राधिकृत है । इसके अतिरिक्त, यह प्रक्रिया महत्वपूर्ण पुलिस अन्वे-ण प्राधिकारियों और न्यायालय का समय को बचाता है और निरोध सुविधाओं के प्रवर्तन का पूरा लाभ प्राप्त होता है ।

11.31 वर्-ं 1961 में, बेरा न्याय संस्थान ने न्यूयार्क सिटी में मैनहटन जमानत परियोजना लागू की । विभिन्न विद्वानों[289] यह मत व्यक्त किया कि समुदाय से ठोस संपर्क रखने वाले प्रतिवादियों की न्यायालय में वापस आने की संभावना है यदि उन्हें व्यक्तिगत मुचलके पर छोड़ा जाए । परियोजना में ऐसे अभियुक्त को लक्ष्य बनाया जो कारागार में थे, यद्यपि बंध-पत्र पर छोड़े जाने का आदेश दिया गया था जिसे वे पूरा नहीं कर सके । रिपोर्ट में उन व्यक्तियों के गैर-वित्तीय उन्मुक्ति की सिफारिश की जिनके ठोस संपर्क थे । परिणाम से यह पता चला कि ऐसे प्रतिवादियों की, उन लोगों की तुलना में जिन्होंने छोड़े जाने के लिए धन बंध-पत्र नि-पादित किए थे, न्यायालय में वापस आने की अधिक संभावना थी । तथापि, परियोजना से यह पता चला कि जब न्यायाधीशों ने न्यायालय में हाजिर होने की उनकी संभावना के बारे में निर्धारण सहित प्रतिवादियों के बारे में सत्यापित सूचना दी गई तो इन प्रतिवादियों की, ऐसे प्रतिवादी जिनकी कोई जोखिम निर्धारण नहीं था, के समूह की तुलना में व्यक्तिगत मुचलके पर छोड़े जाने वाले प्रतिवादियों की तीनगुणा संभावना थी । मैनहटन जमानत परियोजना का भी प्रतिनिर्देश **मोती राम वाले मामले**[290] में उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया ।[291]

11.32 ऐसे कारक जिन पर जोखिम निर्धारण करते समय विचार किया जाए, इस प्रकार है :

- क्या यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि उसने अपराध किया है ;
- आरोपित अपराध की प्रकृति और गंभीरता ;
- संभावित दंड की कठोरता यदि विचारण के परिणामस्वरूप दो-नसिद्ध होती है ;
- साक्ष्य की संभाव्यता ;
- खराब होने का खतरा ;
- अभियुक्त का चरित्र, साधन और प्रति-ठा ;
- लगातार अभिकथित अपराध या दोहराए जाने का खतरा यदि जमानत मंजूर की गई;
- साक्षियों या साक्ष्य से छेड़छाड़ करने का खतरा ;

---

[289] सामान्य तौर पर, चार्ल्स ई. एरेस, एनन रैकिन और हर्बर्ट स्टर्ज, ''द मैनहट्टन बेल प्रोजेक्ट : विचारण पूर्व जमानत के उपयोग पर अंतिम रिपोर्ट'', 38(2) न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय लॉ रिव्यू. 67-95 (1963) ; तर्क संगत और पारदर्शी जमानत का निर्णय करना : नकदी आधारित जोखिम प्रक्रिया से आगे बढ़ना (प्री-ट्रायल जस्टिस इंस्टीट्यूट, 2012)

[290] पूर्वोक्त टिप्पण 3.

[291] पूर्वोक्त टिप्पण 7.

- सामुदायिक संपर्क ;
- अभियुक्त का अपने बचाव की तैयारी करने का अवसर ;
- क्या विचारण में विलंब किए जाने की कोई संभावना है ;
- पूर्व दो-नसिद्धि और अन्य आपराधिक पूर्ववृत्त ; और
- अभियुक्त का स्वास्थ्य, आयु और लिंग ।

11.33 इस प्रकार, जोखिम निर्धारण अभियुक्त की ओर से कोई अवचार न करने या हाजिर होने में असफल रहने के साथ-साथ सामुदायिक सुरक्षा को सुनिश्चित करने की आवश्यकता सहित निर्दोनिता की उपधारणा और अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लघुतम निर्बंधित हस्तक्षेप को संतुलित करने में सहायक होगा ।

ठ. अपवाद

11.34 जमानत मंजूर करने का पूर्ण निर्बंधन अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को क्षीण करेगा । अतः जब कतिपय अटल और अप्रशाम्य परिस्थितियां विद्यमान हो तो जमानत मंजूर की जानी चाहिए । यदि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति गंभीर प्राणघातक बीमारी से ग्रस्त है और चिकित्सीय सहायता की अपेक्षा है जो कारागार अस्पतालों में उपलब्ध नहीं हो सकती तो जमानत मंजूर की जाएगी ।

ड. कारागार अवसंरचना

11.35 इस समय देश में 1401 कारागार हैं, जिन्हें केंद्रीय कारागार, जिला कारागार, उप-कारागार, महिला कारागार, खुला कारागार, किशोर सुधार विद्यालय, विशे-न कारागार और अन्य कारागार के रूप में वर्गीकृत हैं । दो-नसिद्ध, निरुद्ध व्यक्ति और विचाराधीन को मिलाकर कुल संख्या 4,19,623 है जिसका यह अभिप्राय है कि कारागार साथी जनसंख्या के भार से बोझिल हैं जो विद्यमान कारागार अवसंरचना में एक तरह का जनसंख्या विस्फोट है । भारत के कारागार आंकड़े के अनुसार कारागार अधिभोग 114 प्रतिशत है । कारागारों में 4,19,623 लोगों की देखभाल के लिए 53,009 कारागार कर्मचारी हैं जो प्रति आठ लोगों पर एक कारागार कर्मचारी बनता है । कई कारागार संस्थाओं ने आधारभूत सुविधाओं के साथ न्यूनतम स्वास्थ्य, स्वच्छता और सुरक्षा मानदंडों को पूरा करने का प्रयास किया तथा पाइप लाईन और वातायन व्यवस्था जैसी ढांचागत कार्य के तोड़े जाने का संदेह होता है । अनुरक्षण के लिए चिह्नित लघु वित्तीय और मानव-संसाधन के साथ प्रक्रियागत कमियों से निपटना कठिन है । आगे, विचाराधीन कैदियों और दो-नसिद्धि व्यक्तियों का कोई अलगाव नहीं है । बढ़ते अपराध दर और कारागारों में अधिक भीड़ ढ़हते कारागार अवसंरचना और व्यवस्था को सुधारने की आवश्यकता दर्शाते हैं । विचाराधीन कैदियों को जमानत पर उन्हें छोड़ देने से संख्या की कमी से उपयोगी प्रयोजन पूरा होगा । विचाराधीन कैदियों की कोई ऐसी उन्मुक्ति मामले (विशे-नकर गंभीर अपराध) के तथ्यों और परिस्थितियों, विचारण के प्रक्रम, अन्वे-ण रिपोर्ट, अभियुक्त व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक दशा और जमानत अर्जित करने की क्षमता के अधीन होना चाहिए ।

अध्याय 12

नि-कर्ा

12.1 भारत में जमानत की विद्यमान प्रणाली अपने प्रयोजन को पूरा करने में अपर्याप्त और असमर्थ है । पूरे देश में परम हिंसा वाले विकृत अपराध की वृद्धि हो रही है । व-र्ा 1953 से हत्या में 250 प्रतिशत, बलात्संग में 873 प्रतिशत और अपहरण तथा विपहरण में 749 प्रतिशत की वृद्धि हुई । बढ़ते अपराध दर, अपर्याप्त अवसंरचना, अन्वे-ाण तंत्र के आधुनिकीकरण की कमी और विभिन्न अन्य चुनौतियों की पृ-ठभूमि में जमानत प्रणाली को भारत की उत्तरदायी आपराधिक न्याय प्रणाली को सुनिश्चित करने के लिए रोगहर के रूप में नहीं माना जा सकता । वस्तुतः, यह दंड प्रक्रिया संहिता के जमानत उपबंधों को आजकल समाज द्वारा झेली जा रही निकट भवि-य में संभवतः झेली जाने वाली स्थितियों और समय के अनुरुप उन्हें बनाने के लिए पुनः ठीक करने की दिशा में एक छोटा कदम है ।

12.2 वर्तमान रिपोर्ट जमानत मंजूर करने या इनकार करने की शक्तियों के प्रयोग में सिद्धांतों का उपबंध कर और संशोधनों का सुझाव देकर जमानत के मानकों के भिन्न-भिन्न असंगतताओं को उजागर करने का विनम्र प्रयास है । जमानत पद्धतियों से सुसंगत के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों से सहमत होना संभव है, अर्थात् -

- पद्धतियां उचित और साक्ष्य आधारित होनी चाहिए । अभिरक्षा या उन्मुक्ति के विनिश्चय लिंग, मूलवंश, रंगभेद, वित्तीय दशा या सामाजिक हैसियत जैसे कारकों द्वारा अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने के लिए प्रभावित नहीं होने चाहिए ।

- सिद्धांतों को दो मुख्य लक्ष्य को ध्यान देना चाहिए ; (1) ऐसे जोखिम के प्रति संरक्षण कि अभियुक्त नियत तारीख को हाजिर होने में असफल रहता है ; और (2) विनिर्दि-ट व्यक्ति या समुदाय की सुरक्षा के प्रति जोखिमों के विरुद्ध संरक्षण ।

- अनावश्यक विचारणपूर्व परिरोध को कम किया जाए । परिरोध अपराध के ऐसे अभियुक्त व्यक्ति के लिए हानिकर है जिसे अभिरक्षा में रखा गया है, राज्य पर अनुत्पादी भार अधिरोपित करता है और भावी आपराधिक बर्ताव पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है और इसका सुधारात्मक परिप्रेक्ष्य कम हो जाएगा ।

12.3 रिपोर्ट में चर्चित सिद्धांत **उपाबंध 'क'** के रूप में संलग्न दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक में व्यक्त हैं । दिल्ली उच्च न्यायालय के सुसंगत नियमों की सूची **उपाबंध 'ख'** पर है । विभिन्न पणधारियों के साथ परामर्श के संक्षिप्तांश **उपाबंध 'ग'** के रूप में संलग्न है।

ह0/-
(न्यायमूर्ति डा. बी. एस. चौहान)
अध्यक्ष

ह0/-
(न्यायमूर्ति रवि आर. त्रिपाठी)
सदस्य

ह0/-
(प्रो. (डा.) एस. शिवकुमार)
सदस्य

ह0/-
(डा. संजय सिंह)
सदस्य-सचिव

ह0/-
(सुरेश चंद्रा)
पदेन-सदस्य

ह0/-
(डा. जी. नारायण राजू)
पदेन सदस्य

उपाबंध 'क'

दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 2017

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का और
संशोधन करने के लिए
विधेयक

भारत गणराज्य के अरसठवें व-र्ा में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :

1. संक्षिप्त नाम और लागू होना - (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2017 है ।

(2) इस अधिनियम के उपबंध इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या इसके पूर्व गिरफ्तार सभी व्यक्तियों को लागू होंगे ।

2. धारा 2 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) (जिसे इसमें इसके पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता कहा गया है) की धारा 2 में,-

(i) खंड 'क' के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा :–

'(क)' ''जमानत'' से प्राथमिकतः अभिरक्षा में रखे गए, अपराध के संदिग्ध किसी व्यक्ति या अपराध के अभियुक्त किसी व्यक्ति का इस गारंटी पर न्यायिकतः अंतरिम छोड़ा जाना अभिप्रेत है कि यथास्थिति, संदिग्ध व्यक्ति या अभियुक्त किसी बाद की तारीख पर आरोपों का उत्तर देने के लिए उपस्थित होगा और तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा किसी न्यायालय/पुलिस अधिकारी/प्राधिकृत अधिकारी द्वारा अपराध के संदिग्ध किसी व्यक्ति या किसी अभियुक्त व्यक्ति को जमानत का मंजूर किया जाना सम्मिलित है ; और गारंटी में किसी शर्त के बिना छोड़ा जाना, बंध-पत्र की प्रकृति की प्रतिभूति प्रस्तुत करने, प्रतिभू के साथ या बिना के शर्त पर छोड़ा जाना या प्रतिभूति के किसी अन्य प्ररुप को प्रस्तुत करने के शर्त पर छोड़ा जाना या किसी अन्य शर्त के आधार पर छोड़ा जाना जो न्यायालय/पुलिस अधिकारी/ तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा प्राधिकृत अधिकारी द्वारा पर्याप्त समझा जाए, सम्मिलित हैं ;

(ii) खंड (प) के पश्चात् निम्नलिखित खंड अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् :–

'पक' ''प्रतिभूति'' से जमानत के प्रयोजनों के लिए प्रतिभू के साथ या बिना धनीय बंध-पत्र या जमानत के शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए न्यायालय/पुलिस अधिकारी/तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा प्राधिकृत अधिकारी के समाधान तक प्रतिभूति का कोई अन्य प्ररुप सम्मिलित है ।

3. धारा 41 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 में,-

(i) उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (ii) के मद (ड) के पश्चात् निम्नलिखित मद अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् -

"(च) जब यह स्प-ट है कि किया क्या अपराध किसी संगठित समूह के आपराधिक क्रियाकलापों के संबंध में या उसके अग्रसरण में था या सदस्यता द्वारा प्रेरित था या संगठित समूह के अभियुक्त व्यक्ति की नि-ठा में किया गया था ।

(ii) उपधारा (1) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्-

"(1क) गिरफ्तार करने वाला पुलिस अधिकारी, मजिस्ट्रेट को तथ्य, परिस्थिति और गिरफ्तारी का कारण प्रस्तुत करेगा और ऐसा मजिस्ट्रेट जिसके समक्ष ऐसी गिरफ्तार व्यक्ति को पेश किया गया है, का यह कर्तव्य होगा कि वह स्वयं समाधान करे कि इस उपधारा की अपेक्षाओं का पालन गिरफ्तार व्यक्ति के बाबत किया गया है और इस उपधारा के पालन के संबंध में लिखित में अपना समाधान लेखबद्ध करेगा; और यदि मजिस्ट्रेट का यह समाधान नहीं है कि इस उपधारा की अपेक्षाओं का पालन किया गया है तो मजिस्ट्रेट प्रतिभू सहित या इसके बिना बंध-पत्र प्रस्तुत करने पर गिरफ्तार व्यक्ति को छोड़ सकेगा ;

परंतु यह और कि इस उपधारा के उपबंधों का अननुपालन यथास्थिति पुलिस अधिकारी या न्यायिक अधिकारी को अनुशासनिक कार्यवाहियों के जोखिम में डालेगा । उच्च न्यायालय इस बाबत नियमों का संशोधन कर सकेगा ।"

4. धारा 41ख का संधोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41ख में खंड (ग) के पश्चात् निम्नलिखित खंड अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् -

"(घ) जहां कोई पुलिस अधिकारी वारंट के बिना अजामनतीय अपराध के किसी अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तार करता है वहां वह गिरफ्तार व्यक्ति को यथासंभव ऐसी भा-ा में जो अभियुक्त समझ सके, मौखिक और लिखित में कि वह वैधतः निःशुल्क विधि सहायता प्राप्त करने, जमानत पर छोड़े जाने का आवेदन करने और अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में सूचित करेगा ।"

5. धारा 58 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 58 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् -

"58. पुलिस का गिरफ्तारियों की रिपोर्ट करना - पुलिस थानों के भारसाधक अधिकारी जिला मजिस्ट्रेट को, या उसके ऐसा निदेश देने पर उपखंड मजिस्ट्रेट को अपने-अपने थानों की सीमाओं के अंदर धारा 41(1)(ख) के अनुसार ऐसे गिरफ्तार करने के कारणों के साथ वारंट के बिना गिरफ्तार सभी व्यक्तियों के मामलों की रिपोर्ट करेंगे चाहे उन व्यक्तियों की जमानत ले ली गई हो ।"

6. धारा 59 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 59 में "उसी के बंध-पत्र पर या जमानत पर" शब्दों के स्थान पर "जमानत" शब्द रखे जाएंगे ।

7. धारा 81 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 81 की उपधारा (1) के प्रथम परंतुक में ''बंध-पत्र'' शब्द के स्थान पर ''जमानत या प्रतिभूति'' शब्द रखे जाएंगे ।

8. धारा 88 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् -

''88. हाजिरी के लिए बंध-पत्र लेने की शक्ति - जहां कोई व्यक्ति जिसकी हाजिरी या गिरफ्तारी के लिए किसी न्यायालय का पीठासीन अधिकारी समन या वारंट जारी करने के लिए सशक्त है, ऐसे न्यायालय में उपस्थित है तब वह अधिकारी उस व्यक्ति से न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में जिसको मामला विचारण के लिए अंतरित किया जाता है और इस प्रयोजन के लिए ऐसी हाजिरी की प्रतिभूति प्रस्तुत करने के लिए व्यक्ति से अपेक्षा कर सकेगा :

परंतु, यदि व्यक्ति अपने कुटुम्ब के किसी सदस्य यदि कोई है, उसकी आयु और आधार-कार्ड या पैन कार्ड की विशि-टियों के साथ पता का उल्लेख करते हुए गैर-धनीय प्रतिभूति या विधि द्वारा मान्यता प्राप्त कोई अन्य दस्तावेज प्रस्तुत करता है तो न्यायालय समाधान होने पर आवश्यकता उद्भूत होने तक प्रतिभूति फाइल करने से मुक्त कर सकेगा;

परंतु यह और कि इस उपधारा में अंतर्वि-ट छोड़े जाने का तरीका ऐसे व्यक्ति को लागू नहीं होगा जिसे पहले संज्ञेय और अजमानतीय अपराध के लिए दो-नसिद्ध किया गया है ।''

9. धारा 167 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) में,-

(i) ''इतनी अवधि के लिए जो कुल मिलाकर 15 दिन से अधिन न होगी'' शब्दों के स्थान पर ''इतनी अवधि के लिए जो कुल मिलाकर ऐसी अवधि को अपवर्जित करते हुए, 15 दिन से अधिक न होगी जो अपराध का अभियुक्त व्यक्ति अस्पताल में भर्ती होने या अन्यथा के कारण अन्वे-नण के लिए उपलब्ध नहीं है'' शब्द रखे जाएंगे ;

(ii) प्रथम परंतुक के स्प-टीकरण-II ''खंड'' शब्द के स्थान पर ''पैराग्राफ'' रखा जाएगा ;

(iii) प्रथम परंतुक के पश्चात् निम्नलिखित परंतुक अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्-

''परंतु यह और कि मजिस्ट्रेट आवेदन प्राप्त होने पर और अभियोजक को सम्यक् नोटिस देने के पश्चात् जमानत की अवधि पर पुनर्विचार करेगा, यदि अपराध का अभियुक्त व्यक्ति आदेश पारित होने की तारीख से 7 दिनों के भीतर प्रतिभूति देने में सक्षम नहीं है, तो अवधि को उपांतरित कर सकेगा जैसा वह ठीक समझे ।''

(iv) तीसरे परंतुक में ''यह और'' शब्दों के स्थान पर ''भी'' शब्द रखा जाएगा ;

10. धारा 170 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 170 में,-

(i) उपधारा (2) में ''प्रतिभूति लेता है'' और ''बंध-पत्र नि-पादित करने'' शब्दों के स्थान पर क्रमशः ''जमानत हेतु उसे स्वीकार करता है'' और ''प्रतिभूति उपलब्ध कराने'' शब्द रखे जाएंगे ;

(ii) उपधारा (3) ''बंध-पत्र'' शब्द के स्थान पर ''प्रतिभूति'' शब्द रखे जाएंगे ;

(iii) उपधारा (4) में ''वह अधिकारी जिसकी उपस्थिति में बंध-पत्र नि-पादित किया जाता है'' और ''जिसने नि-पादित किया'' शब्दों के स्थान पर क्रमशः ''वह अधिकारी जिसके समक्ष प्रतिभूति दी गई है'' और ''जिसने प्रस्तुत किया'' शब्द रखे जाएंगे ;

11. धारा 171 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 171 में,-

(i) ''अपने बंध-पत्र से भिन्न'' शब्दों के स्थान पर, ''जो अधिक है'' शब्द रखे जाएंगे;

(ii) परंतुक में ''बंध-पत्र नि-पादित करने'', ''प्रतिभूति देने''. और ''ऐसा बंध-पत्र नि-पादित कर देता है'' शब्दों के स्थान पर क्रमशः ''प्रतिभूति देने'' और ''ऐसी प्रतिभूति देता है'' शब्द रखे जाएंगे ।

12. धारा 187 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 187 की उपधारा (1) में ''उसकी हाजिरी के लिए प्रतिभुओं सहित या रहित बंध-पत्र लेता है'' शब्दों के स्थान पर ''इस शर्त पर कि वह हाजिर होगा उसका जमानत स्वीकार करता है'' शब्द रखे जाएंगे ।

13. धारा 262 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 262 की उपधारा (2) में ''इस अध्याय'' शब्द के पूर्व ''भारतीय दंड संहिता की धारा 229क के अधीन अपराध के सिवाए'' शब्द अंतःस्थापित किए जाएंगे ।

14. धारा 325 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 325 की उपधारा (1) में ''बंध-पत्र नि-पादित करने'' शब्दों के स्थान पर ''प्रतिभूति देने'' शब्द रखे जाएंगे ।

15. धारा 360 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 की उपधारा (1) में ''प्रतिभुओं सहित या रहित उसके द्वारा बंध-पत्र देने पर'' शब्दों के स्थान पर ''प्रतिभूति देने पर'' शब्द रखे जाएंगे ।

16. धारा 424 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 424 की उपधारा (1) के पैरा (ख) में ''अपराधी द्वारा प्रतिभुओं सहित या रहित बंध-पत्र नि-पादित किए जाने'' शब्दों के स्थान पर ''प्रतिभूति देने'' शब्द रखे जाएंगे ।

17. धारा 436 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 की उपधारा (1) के,-

(i) ''स्प-टीकरण'' को उसके ''स्प-टीकरण - 1'' के रूप में संख्यांकित किया जाएगा ;

(ii) दूसरे परंतुक के पश्चात् निम्नलिखित स्प-टीकरण अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् -

"**स्प-टीकरण II** - जमानत की रकम न्यायालय द्वारा अपराध के अभियुक्त व्यक्ति की वित्तीय दशा, अपराध की प्रकृति और पीड़ित या किसी अन्य व्यक्ति की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए, नियत की जाए ।"

18. धारा 436क के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् -

436क. अधिकतम अवधि, जिसके लिए विचाराधी कैदी निरुद्ध किया जा सकता है,-

"(1) जहां कोई व्यक्ति इस संहिता के अधीन अन्वे-ाण, जांच या विचारण की अवधि के दौरान कारावास की उस अधिकतम अवधि जो उस विधि के अधीन उस अपराध के लिए दंडित की गई है एक-तिहाई से अधिक की अवधि के लिए निरोध भोग चुका है वहां वह प्रतिभुओं सहित या रहित व्यक्तिगत बंध-पत्र पर न्यायालय द्वारा छोड़ दिया जाएगा ;

(2) जहां, कोई व्यक्ति इस संहिता के अधीन अन्वे-ाण, जांच या विचारण की अवधि के दौरान जिसके लिए विनिर्दि-ट अवधि सात व-र्ा से अधिक है (ऐसा अपराध नहीं है जिसके लिए मृत्युदंड उस विधि के अधीन एक दंड के रूप में विनिर्दि-ट किया गया है) उस विधि के अधीन उस अपराध के लिए विनिर्दि-ट की गई दंड की अधिकतम अवधि के आधे से अधिक की अवधि का निरोध भोग चुका है वह प्रतिभुओं सहित या रहित व्यक्तिगत बंध-पत्र पर न्यायालय द्वारा छोड़ दिया जाएगा ;

परंतु, न्यायालय लोक अभियोजक की सुनवाई करने और लिखित में कारण लेखबद्ध करने के पश्चात् उक्त अवधि के आधे से अधिक अवधि के लिए ऐसे व्यक्ति का निरोध बने रहने का आदेश दे सकेगा या उसे जमानत पर छोड़ सकेगा ।

परंतु, यह और कि ऐसा कोई व्यक्ति उस विधि के अधीन उक्त अपराध के लिए उपबंधित कारावास की अधितम अवधि से अधिक के लिए अन्वे-ाण, जांच या विचारण की अवधि के दौरान किसी भी दशा में निरुद्ध नहीं किया जाएगा ।

स्प-टीकरण - जमानत मंजूर करने के लिए इस धारा के अधीन निरोध की अवधि की संगणना करने में अपराध के अभियुक्त व्यक्ति द्वारा कार्यवाही में किए गए विलंब के कारण भोगी गई निरोध की अवधि को अपवर्जित किया जाएगा ।

(3) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का अधिनियम सं. 39) की धारा 9 की उपधारा (3) के अधीन अभिहित जिला विधिक सेवा प्राधिकरण का सचिव इस धारा के अनुपालन का उत्तरदायी होता है ।"

19. धारा 437 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437,-

(i) की उपधारा (1) के खंड (ii) में,-

(I) ''किंतु सात व-र्ा से अनधिक'' शब्दों के स्थान पर ''किंतु सात व-र्ा से कम'' शब्द रखे जाएंगे ;

(II) चौथे परंतु के पश्चात् निम्नलिखित परंतुक अंतःस्थापित किया जाएगा, अथात्

परंतु, आर्थिक अपराधों के मामलों में न्यायालय अंतवर्लित अभिकथित रकम और छले गए व्यक्तियों की संख्या पर सम्यक् ध्यान देगा ।''

(ii) उपधारा (7) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्-

''(8) जमानत आवेदन का निपटान सामान्यतः एक सप्ताह के भीतर किया जाएगा ।''

20. धारा 437क के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क के स्थान पर नई धारा रखी जाएगी, अर्थात्-

''**437क. अभियुक्त को अगले अपील न्यायालय के समक्ष उपसंजात होने की अपेक्षा के लिए व्यक्तिगत बंध-पत्र,-**

(1) जहां अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को यथास्थिति विचारण न्यायालय या अपील न्यायालय द्वारा दो-नसिद्ध किया जाता है वहां इस प्रकार दो-नसिद्ध व्यक्ति उच्चतर न्यायालय के समक्ष हाजिरी के लिए व्यक्तिगत बंध-पत्र नि-पादित करेगा यदि ऐसी अपेक्षा हो जो निर्णय की तारीख से 180 दिनों की अवधि तक प्रभावी बना रहेगा।

(2) यदि ऐसा व्यक्ति उपस्थित होने में असफल रहता है तो व्यक्तिगत बंध-पत्र समपहृत हो जाएगा और धारा 446 के अधीन प्रक्रिया लागू होगी ।''

21. धारा 438 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में,-

(i) उपधारा (2) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्-

''(2क) इस धारा के अधीन उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा किया गया कोई आदेश उस अवधि तक के लिए सीमित होगा जैसा न्यायालय उचित समझे या जब तक आरोप-पत्र नहीं फाइल किया जाता जो पूर्वतर हो ।''

(ii) उपधारा (3) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्-

''(4) उपधारा (2) के अधीन अंतरिम आदेश में उपदर्शित तारीख को न्यायालय लोक अभियोजक और परिवादी को सुनेगा और उनकी दलीलों पर सम्यक् विचार

करने के पश्चात् वह उपधारा (1) के अधीन किए गए अंतरिम आदेश की पुन्टि, उपांतरण या रद्द कर सकेगा ।''

22. नई धारा 439क का अंतःस्थापन- दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्

''**439क. जमानत आदेश** -

(1) जब कभी जमानत से इनकार किया जाता है तो न्यायालय ऐसी इनकारी के लिए संक्षेप में कारण अभिलिखित करेगा और जहां न्यायालय द्वारा सशर्त जमानत दी जाती है वहां अधिरोपित शर्तें युक्तियुक्त होंगी ।

(2) जब ऐसे व्यक्ति को जो अभिरक्षा में है, जमानत मंजूर की जाती है तो जमानत आदेश की प्रति इस निदेश के साथ कारागार को भेजी जाएगी कि प्रति ऐसे व्यक्ति को दी जाए ।''

23. धारा 440 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 440 में उपधारा (2) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्-

''(3) अजमानतीय अपराध के लिए जमानत स्वीकार किया गया कोई व्यक्ति आदेश की तारीख से 30 दिनों तक, जो निर्धनता के कारण न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश के अनुसार प्रतिभूति देने में असमर्थ है, न्यायालय के समक्ष प्रतिभूति रकम की कमी के लिए आवेदन कर सकेगा और न्यायालय अभियोजक को पर्याप्त नोटिस देने के पश्चात् आवेदन पर विचार कर सकेगा ।''

24. धारा 441 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 441 में उपधारा (4) के पश्चात् निम्नलिखित उपधाराएं अंतःस्थापित की जाएंगी, अर्थात् -

''(5) यदि ऐसे व्यक्ति को विधि द्वारा मान्यता प्राप्त किसी दस्तावेज के आधार पर गैर धनीय प्रतिभूति के साथ जमानत पर छोड़ा जाता है तो ऐसा व्यक्ति अधिकारी या न्यायालय के समक्ष ऐसी प्रतिभूति जमा करेगा ।

(6) न्यायालय अन्वे-क अधिकारी द्वारा या थाने के प्रभारी द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा सत्यापन के अधीन रहते हुए ऐसे क्षेत्र के निवासी न होने वाले व्यक्ति की प्रतिभू स्वीकार कर सकेगा जिस पर न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता है ।

25. धारा 443 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 443 में दोनों स्थानों पर ''प्रतिभुओं'' शब्दों के स्थान पर ''प्रतिभूति'' शब्द रखे जाएंगे ।

26. धारा 444 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 444 की उपधारा (3) में ''पर्याप्त प्रतिभुओं'' शब्दों के पश्चात् ''या अन्य प्रतिभूति उपलब्ध कराने'' शब्द अंतःस्थापित किए जाएंगे ।

27. धारा 446 का संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 446 की,-

(i) उप-धारा (1) में, -

(क) ''संपत्ति पेश करने के लिए है'' और ''अंतरित किया गया है'' शब्दों के पश्चात् क्रमशः ''या किसी अन्य शर्त के अनुपालन के लिए'' और ''यह कि व्यक्ति ने बंध-पत्र का अतिक्रमण किया है या'' शब्द अंतःस्थापित किए जाएंगे ;

(ख) ''स्प-टीकरण'' के स्थान पर निम्नलिखित स्प-टीकरण रखा जाएगा, अर्थात्-

''**स्प-टीकरण** - न्यायालय के समक्ष हाजिर होने या संपत्ति पेश करने या किसी अन्य शर्त के पालन का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत न्यायालय के समक्ष जिसको तत्पश्चात् मामला अंतरित किया जाता है यथास्थिति हाजिर होने या संपत्ति पेश करने की शर्त है ।''

(ii) उपधारा (5) में ''बंध-पत्र'' शब्द के स्थान पर ''प्रतिभूति'' शब्द रखा जाएगा ।

28. धारा 447 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 447 के स्थान पर नई धारा रखी जाएगी, अर्थात्-

''**447. प्रतिभू के दिवालिया हो जाने या उसकी मृत्यु हो जाने या बंध-पत्र का समपहरण हो जाने की दशा में प्रक्रिया -** जब इस संहिता के अधीन बंध-पत्र या प्रतिभूति का कोई प्रतिभू दिवालिया हो जाता है या मर जाता है अथवा जब किसी बंध-पत्र या प्रतिभूति का धारा 446 के उपबंध के अधीन समपहरण हो जाता है तब वह न्यायालय जिसके आदेश से ऐसा बंध-पत्र या प्रतिभूति दिया गया था या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट उस व्यक्ति को जिससे ऐसी प्रतिभूति या बंध-पत्र मांगी गई थी, यह आदेश दे सकता है कि वह मूल आदेश के निदेशों के अनुसार नई प्रतिभूति या बंध-पत्र दे और यदि ऐसा बंध-पत्र या प्रतिभूति न दी जाए तो प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट ऐसी कार्यवाही कर सकता है मानो उस मूल आदेश के अनुपालन में व्यतिक्रम किया गया है । ''

29. धारा 448 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 448 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् -

''**448. अवयस्क से अपेक्षित बंध-पत्र** - यदि प्रतिभूति प्रस्तुत करने के लिए किसी न्यायालय अधिकारी द्वारा अपेक्षित व्यक्ति अवयस्क है तो वह न्यायालय या अधिकारी उसके बदले में केवल प्रतिभू या प्रतिभुओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिभूति स्वीकार कर सकता है ।''

30. द्वितीय अनुसूची में संशोधन - दंड प्रक्रिया संहिता की द्वितीय अनुसूची के,-

(i) प्ररुप 45 में, ''धारा 43क'' के प्रतिनिर्देश का लोप किया जाएगा ;

(ii) प्ररुप सं. 45 के पश्चात् निम्नलिखित प्ररुप अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्-

प्ररुप सं. 45क

(धारा 437क देखें)

मैं..... (नाम)..... निवासी..... न्यायालय ..... मामला सं. ..... अपील सं. ..... में दो-नमुक्त हो गया हूं, मैं अपील न्यायालय में हाजिर होने का वचन लेता हूं जब कभी न्यायालय में हाजिर होने की मेरी अपेक्षा होगी ।

यह बंध-पत्र निर्णय की तारीख से एक सौ अस्सी दिनों की अवधि तक प्रवृत्त रहेगा ।

तारीख .....

(हस्ताक्षर)

दिल्ली उच्च न्यायालय के सुसंगत नियम

खंड 3 अध्याय 11 भाग-ख

3. पुलिस अन्वे-ण का पूरा न किया जाना पुलिस द्वारा निरोध को उचित नहीं ठहराता -

जांच या विचारण का पूरा न किया जाना बाद वाले को उचित ठहराता है किंतु पूर्व वाला कुछ अधिक की अपेक्षा करता है जैसाकि यह व्यक्ततः धारा 167 में उपबंधित है कि मजिस्ट्रेट के विशे-न आदेश के अभाव में अन्वे-ण का पूरा न किए जाने को पुलिस द्वारा अभियुक्त व्यक्ति के निरोध के लिए पर्याप्त मामला नहीं समझा जाएगा । मजिस्ट्रेट को यह सूचित करना चाहिए कि जब कभी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और अभिरक्षा में निरुद्ध किया जाता है, पुलिस द्वारा प्रतिप्रे-ण के लिए उसके समक्ष पेश किया जाता है तो पुलिस उनके समक्ष प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और धारा 167 की उपधारा (1) द्वारा यथापेक्षित जीमनिस और अन्य आवश्यक कागजात प्रस्तुत करता है । मजिस्ट्रेट मामला डायरी या उनकी प्रतियों के प्रत्येक पृ-ठ पर उन्हें देखे जाने के संकेत के रूप में हस्ताक्षर करेगा और तारीख डालेगा ।

4. **वास्तविक आवश्यकता के मामलों में प्रतिप्रे-ण मंजूर किया जाना** - सामान्यतः जब अन्वे-ण अपूर्ण रहता है तो उचित अनुक्रम अभियुक्त व्यक्ति को ऐसे साक्ष्य के साथ जैसा अभिप्राप्त किया गया है तत्काल भेजा जाए और मजिस्ट्रेट द्वारा तुरंत विचारण आरंभ किया जाए और यथासंभव शीघ्र कार्यवाही आरंभ की जाए और तब आगे साक्ष्य के लिए स्थगित किया जाए । उच्च न्यायालय की राय में पुलिस अभिरक्षा को प्रतिप्रे-ण वास्तविक आवश्यकता के मामलों में ही मंजूर किया जाना चाहिए और जब आवेदन में यह दर्शाया जाए कि यह विश्वास करने का उचित कारण है कि अभियुक्त मामले को स्प-ट करने में उचित रूप से उल्लिखित कर सकता है या अन्यथा पुलिस की सहायता कर सकता है ।

5. मजिस्ट्रेट को संस्वीकृति प्राप्त करने के लिए पुलिस को प्रतिप्रे-ण करने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना चाहिए - पुलिस मात्र अभियुक्त से दो-न की कुछ स्वीकृति निकालने की आशा में 24 घंटे से अधिक की अधिक अवधि के लिए अपनी अभिरक्षा में अभियुक्त को प्रतिधारित करने के प्रायः इच्छुक रहती है । यह धारा 163 और दंड प्रक्रिया संहिता की निम्नलिखित धारा और सामान्यतः संहिता की भावना के प्रतिकूल है ; और मजिस्ट्रेट को प्रतिप्रे-ण मंजूर करने में तत्पर रहकर इस उद्देश्य को सुकर न बनाने के प्रति सतर्क रहना चाहिए ।

6. प्रतिप्रे-ण 15 दिनों से अधिक के लिए मंजूर नहीं किया जा सकता । ऐसी प्रक्रिया जब अभियुक्त को प्रतिप्रे-ण अभिप्राप्त करने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष लाया जाता है - आगे यह स्मरण रखना चाहिए कि पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रे-ण एक साथ 15 दिनों से अधिक अवधि के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन और तृतीय वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा या राज्य सरकार द्वारा विशे-न रूप से सशक्त न किए गए द्वितीय वर्ग के मजिस्ट्रेट द्वारा मंजूर नहीं किया जा सकता । जब किसी अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (1) के अनुसार मजिस्ट्रेट के

समक्ष लाया जाता है तो मजिस्ट्रेट को निम्नलिखित अनुक्रम में से किसी एक अनुक्रम को अपना चाहिए : -

1. यदि उसके पास मामले का विचारण करने या विचारण के लिए सुपुर्द करने की अधिकारिता है तो,

(क) इस आधार पर तुरंत अभियुक्त को मुक्त करेगा कि आगे निरोध के लिए कोई हेतु नहीं दर्शाया गया है, या

(ख) पुलिस अभिरक्षा में उसे प्रतिप्रेनित करेगा (यदि ऐसा करने के लिए सशक्त है) या 15 दिनों से अनधिक अवधि के लिए मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में प्रतिप्रेनित करेगा जो अवधि यदि 15 दिन से कम है तो बाद में कुल 15 दिनों की सीमा तक बढ़ाई जा सकेगी, या

(ग) स्वयं अभियुक्त का विचारण करने के लिए तुरंत कार्यवाही आरंभ करेगा या विचारण के लिए उसे सुपुर्द करने की दृन्टि से जांच रोक देगा, या

(घ) यदि किसी कारण से वह आवश्यक समझता है तो अभियुक्त को तुरंत उस जिला या उपखंड मजिस्ट्रेट को अग्रेनित करेगा जिसका वह अधीनस्थ है, या

(ङ) यदि स्वयं जिला या उपखंड मजिस्ट्रेट अभियुक्त को विचारण के लिए सक्षम अधीनस्थ न्यायालय को भेज सकेगा ।

(2) यदि उसके पास अभियुक्त का विचारण करने या विचारण के लिए उसे सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है तो वह या तो-

(क) यदि वह समझता है कि आगे निरोध करने का कोई आधार नहीं है तो तुरंत अभियुक्त को इसके विचारण या उन्मोचन को ध्यान में रखते हुए अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को भेजेगा, या

(ख) यदि वह समझता है कि आगे निरोध का आधार है तो जैसा वह ठीक समझे 15 दिनों से अनधिक अवधि के लिए जो अवधि यदि 15 दिनों से कम है तो बाद में कुल 15 दिनों की सीमा तक बढ़ाई जा सकेगी, पुलिस अभिरक्षा (यदि वह ऐसा करने के लिए सशक्त है) में या मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में उसे प्रतिप्रेनित कर सकेगा ।

टिप्पण - पंजाब सरकार अधिसूचना सं. 11984 तारीख 16 अप्रैल, 1924 द्वारा द्वितीय वर्ग के सभी वेतन भोगी मजिस्ट्रेटों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) जैसा यह 1923 के अधिनियम 18 द्वारा संशोधित है, के अधीन पुलिस की अभिरक्षा में अभियुक्त व्यक्तियों के निरोध को प्राधिकृत करने की शक्ति निहित की गई है ।

7. अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए जो प्रतिप्रे-ण की आवश्यकता के बारे में स्वयं का समाधान करे - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेि-त करने के आदेश देने के पूर्व मजिस्ट्रेट को स्वयं का यह समाधान करना चाहिए कि-

(1) यह विश्वास करने के आधार हैं कि पुलिस द्वारा भेजे गए व्यक्ति के विरुद्ध अभियोग सुआधारित है ;

(2) अभियुक्त व्यक्ति को मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में उसे निरुद्ध करने के बजाए पुलिस अभिरक्षा में भेजने के उचित और पर्याप्त करण हैं ।

पुलिस द्वारा आवेदन किए गए प्रे-ण के लिए आवश्यकता या अन्यथा के बारे में राय गठित करने के लिए, मजिस्ट्रेट को धारा 167 के अधीन प्रस्तुत डायरी की प्रतियों की परीक्षा करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मामले में पूर्व में क्या आदेश (यदि कोई है) दिया गया है और अभियुक्त व्यक्ति की अभिरक्षा में और अधिक अवधि हेतु, पुलिस अभिरक्षा में आगे प्रतिप्रेि-त करने के लिए और ठोस आधार होने की आवश्यकता है ।

अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष हमेशा पेश किया जाए जब प्रतिप्रे-ण की मांग की जाए ।

8. प्रतिप्रे-ण मामलों को लागू सिद्धांत - प्रतिप्रे-ण मंजूर करने के मामले में मजिस्ट्रेट के मार्ग-दर्शन के लिए निम्नलिखित सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं और जिला मजिस्ट्रेट (या ऐसे जिले जिसमें न्यायपालिका से कार्यपालिका के पृथक्करण के प्रयोग का प्रयास किया जा रहा है, अपर जिला मजिस्ट्रेट) से यह विचार करने की अपेक्षा है कि उसने सावधानीपूर्वक निम्नलिखित का पालन किया है :-

(i) किसी भी परिस्थिति में अभियुक्त व्यक्ति को पुलिस अभिरक्षा में तब तक नहीं भेजा जाना चाहिए जब तक यह स्प-ट नहीं किया गया हो कि उसकी उपस्थिति जांच के पूरा करने के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण और विशि-ट प्रयोजन को पूरा करने के लिए वास्तविक रूप से आवश्यक है । प्रतिप्रे-ण के लिए आवेदन करने वाले अधिकारी द्वारा किया गया यह सामान्य कथन कि अभियुक्त और जानकारी देने में समर्थ होगा, स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए ।

(ii) जब अभियुक्त व्यक्ति को पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेि-त किया जाता है तो प्रतिप्रे-ण की अवधि यथासंभव छोटी होनी चाहिए ।

(iii) ऐसे सामान्य मामले जिसमें पुलिस द्वारा जांच पूरा करने में समय की अपेक्षा है वहां अभियुक्त व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के अभिरक्षा में निरुध किया जाना चाहिए ।

(iv) जहां प्रतिप्रे-ण का उद्देश्य कैदी के कथन का मात्र सत्यापन है वहां उसे मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में प्रतिप्रेि-त किया जाना चाहिए ।

(v) ऐसे अभियुक्त व्यक्ति जिसने मजिस्ट्रेट के समक्ष संस्वीकृति की है, को न्यायिक बंदीगृह में भेजा जाना चाहिए और संस्वीकृति अभिलिखित करने कें पश्चात् पुलिस को नहीं दिया जाना चाहिए । यदि पुलिस को बाद में अन्वे-ण के लिए अभियुक्त व्यक्ति की अपेक्षा है तो विस्तार से कारण बताते हुए लिखित आवेदन दिया जाना चाहिए कि क्यों उसकी अपेक्षा है और आवेदन में नामित विशि-ट प्रयोजन के लिए उसको अभियुक्त के परिदान के लिए मजिस्ट्रेट से आदेश अभिप्राप्त करना चाहिए । यदि ऐसा अभियुक्त व्यक्ति जिसे संस्वीकृति करने के प्रयोजन के लिए केस किया गया है, संस्वीकृति करने से इनकार करता है या ऐसा कथन किया है जो अभियोजन की दृ-टि से असंतो-नप्रद है तो उसे पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेि-त किया जाना चाहिए ।

10. ऐसी प्रक्रिया जब मामले को पूरा करने के लिए 15 दिनों से अधिक के लिए प्रतिप्रे-ण की अपेक्षा है - यदि 15 दिनों की सीमा समाप्त हो गई है और पुलिस द्वारा आगे अन्वे-ण के लिए अब भी अपेक्षा है तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 344 में अधिकथित प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए । मामले को मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत किया जाना चाहिए और अभियुक्त यदि निरोध आवश्यक है, मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में बना रहे । मामले को प्रत्येक 15 दिनों से अनधिक की अवधि के लिए समय-समय पर मुल्तवी या स्थगित किया जा सकेगा और इस प्रकार स्थगन समाप्त होने पर अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए और स्थगन के आदेश में ऐसा आदेश करने का उचित कारण दर्शित किया जाए ।

खंड 3 अध्याय 10

1. जमानत मंजूर करने को लागू सिद्धांत - यह समझा जाना चाहिए कि सभी जमानती अपराध के लिए जमानत एक अधिकार है न कि पक्षपात । अभियुक्त व्यक्ति से जमानत की मांग करने में, मजिस्ट्रेट को अभियुक्त व्यक्ति की सामाजिक हैसियत को ध्यान में रखना चाहिए और तदनुसार जमानत की रकम नियत करनी चाहिए तथा यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि इस प्रकार नियत किया गया रकम अधिक न हो । जमानत की रकम और वह धारा जिसके अधीन वह दंडनीय है, आरोपित अपराध, उसके जमानत प्रस्तुत करने के व्यतिक्रम में बंदीगृह में निरुद्ध किए जाने के अभियुक्त के निदेश देने वाले आदेश में हमेशा लिखा जाना चाहिए ।

जमानत दो-नसिद्धि के पूर्व किसी समय दिया जा सकेगा और स्वीकार किया जाएगा । जमानत दंड प्रक्रिया संहिता (नई संहिता की धारा 389(3) देखें) की धारा 426 की उपधारा (2क) के उपबंधों के अनुसार दो-नसिद्धि के पश्चात् भी दिया और स्वीकार किया जा सकेगा जब अजमानतीय अपराध के दो-नसिद्ध से भिन्न व्यक्ति न्यायालय का समाधान करता है कि वह अपील फाइल करना चाहता है ।

2. मुचलका - जब अजमानतीय अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से भिन्न कोई व्यक्ति दंड न्यायालय के समक्ष लाया जाता है तो न्यायालय यदि वह ठीक समझता है तो जमानत लेने के

बजाए उसकी हाजिरी के लिए प्रतिभू के बिना उसके बंध-पत्र नि-पादित करने पर उसे उन्मोचित कर सकेगा (दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 496), (नई संहिता की धारा 436(1)) ।

3. अजमानतीय मामलों में जमानत - अजमानतीय अपराध के मामले में भी ऐसी परिस्थितियां हैं जिसके अधीन अभियुक्त की जमानत स्वीकार की जा सकती है । इनका उल्लेख संहिता की धारा 497 में है (नई संहिता की धारा 437) । 1955 के संशोधन अधिनियम सं. 26 द्वारा उपधारा (3-क) अंतःस्थापित की गई है और इसमें यह उपबंध है कि यदि विचारण साक्ष्य के लिए नियत पहली तारीख के सात दिनों के भीतर समाप्त नहीं होता है और यदि अभियुक्त उक्त पूरी अवधि के दौरान अभिरक्षा में रहा है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा जब तक लेखबद्ध कारणों से मजिस्ट्रेट अन्यथा निदेश नहीं देता ।

4. जमानत के बदले में नकद या सरकारी वचन-पत्र स्वीकार किया जाएगा - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 513 (नई संहिता की धारा 445 देखें) के अधीन अच्छे बर्ताव के लिए बंध-पत्र के मामले के सिवाए जमानत के बदले में नकद या सरकारी वचन-पत्र का निक्षेप स्वीकार किया जा सकेगा ।

5. जमानत का तत्काल मंजूर किया जाना - विधि की अपेक्षा से अधिक अवधि के लिए कारागार में विचारण के लिए पक्षकारों को निरुद्ध किया जाना कठिन है । उन्हें बचाव के अपने साधनों के प्रति प्रतिकूल बर्ताव किया जाता है ; यदि सम्मानीय और निर्दो-न हैं तो उन्हें ऐसे कारावास के अप्रति-ठा से जूझना पड़ता है जिसका उन्मोचन या दो-नमुक्ति का कोई पश्चात्वर्ती आदेश प्रायश्चित नहीं कर सकता ।

.....

7. अवकाश दिनों पर जमानत - सेशन न्यायाधिशों को नियत समय पर अवकाश के दिनों पर अपने निवास पर उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले जमानत के अत्यावश्यक आवेदनों को अनुज्ञात करना चाहिए जब ऐसे आवेदन अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण कार्यदिवस को न्यायालय में प्रस्तुत न किए जा सकते हों ।

.....

9. बंध-पत्र की पर्याप्तता के बारे में जांच - अभियुक्त व्यक्तियों से बंध-पत्र और उनकी प्रतिभूति लेने के बारे में विधि के उपबंधों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया में काफी विभिन्नता विद्यमान है और विभिन्नता का परिणाम न केवल अनावश्यक जांच में नियोजित किए जाने वाले पुलिस अधिकारियों का मामला है बल्कि पर्याप्तता या अन्यथा जमानत दिए जाने की जांच के परिणामस्वरूप लंबित अभिरक्षा में अभियुक्त व्यक्ति को रखा जाना भी है । धारा 499 (नई संहिता की धारा 499) की उपधारा (3) अब न्यायालय को यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए शपथ-पत्र स्वीकार करने के लिए समर्थ बनाता है कि क्या प्रतिभूतियां पर्याप्त हैं या नहीं । तथापि, वहीं यह मजिस्ट्रेट का स्वयं का समाधान करने का कर्तव्य है कि सारतः प्रतिभूतियां उन

व्यक्तियों की हैं जिनके बारे में यह युक्तियुक्ततः यह उपधारित किया जाए कि यदि आवश्यक हो तो वे बंध-पत्र के निबंधनों को संतु-ट कर सकते हैं ।

.....

15. जमानत आवेदनों का अत्यावश्यक समझा जाना - अपील सहित आपराधिक मामलों में जमानत के सभी आवेदनों को अत्यावश्यक समझा जाना चाहिए ।

16. अन्य न्यायालयों के लिए रिपोर्ट हेतु अभियोजन अभिकरण को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मूल जमानत आवेदनों और उससे संबंद्ध अन्य दस्तावेजों को अग्रेन्ित करना अनियमित है । जब कभी अभियोजन अभिकरण को नोटिस जारी करना वांछनीय समझा जाए तो जमानत आवेदन की सुनवाई के लिए नियत तारीख नियत की जानी चाहिए जिससे कि सभी संबद्ध लोगों को सम्यक् रूप से जारी की जा सके ।

जमानत परियोजना का परामर्श-पत्र

भारत के विधि आयोग ने जमानत के वि-नय पर अध्ययन करने के लिए विभिन्न पणधारियों से परामर्श किया । उसे अनुभवी न्यायिक अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों, अभियोजन आदि से परामर्श करने का अवसर मिला ।

1. न्यायिक अधिकारियों के साथ परामर्श

भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली में जमानत संबंधी वि-नयों पर संपूर्ण देश के विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे न्यायिक अधिकारियों के साथ 21 जनवरी, 2017 को परामर्श किया गया । परामर्श के दौरान जमानत आवेदनों पर विचार करने, जमानतीय या अजमानतीय होने के विशि-ट अपराधों के औचित्व के प्रश्न और दंड प्रक्रिया संहिता के विशि-ट विधिक उपबंधों पर अनेक मुद्दों के अलावा जमानत के लिए आवेदन करने वाले विदेशियों के बर्ताव के लिए सुसंगत मापदंड की पहचान पर चर्चा की । इस आयोजन में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर और माननीय न्यायमूर्ति यू. यू. ललित ने वि-नय पर मार्गदर्शन दिया । चर्चा का संयोजन दिल्ली उच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति सुश्री मुक्ता गुप्ता ने किया । न्यायाधीशों ने यह कहते हुए चर्चा आरंभ की कि 'जमानत' एक ऐसा उपकरण है जिसका उपयोग न्याय के प्रयोजन को आगे बढ़ाने और सामाजिक हितों के संरक्षण के लिए किया जाना चाहिए न कि इसके सहायक बनाने के लिए । न्यायाधीशों ने अग्रिम जमानत विधि के दुरुपयोग और इसके हाल ही के पूर्व निर्णयों की भी चर्चा की । पैनल ने यह भी इंगित किया कि पहले 15 दिनों में अन्वे-ण पूरा करने के लिए जांच प्राधिकारियों को मंजूर की गई अभिरक्षा को सीमित करने वाला उपबंध न्याय के प्रयोजनों को उलझन में डालता है । आर्थिक अपराधों की बढ़ती संख्या और इससे निपटने के लिए अप्रभावी जमानत उपबंधों की भी चर्चा की गई ।

यह पहचान किया गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 379 और 498क की पहचान ऐसे अपराध के रूप में की गई जिसे संगठित अपराध में कतिपय मूल्य तक के अपराधों के लिए अजमानतीय अपराध प्रवर्ग से हटाकर जमानतीय प्रवर्ग में रखा जाए । भारतीय दंड संहिता की धारा 279, 324, 325, 363, 374, 417, 419, 435, 436, 489ग, 490 और 506 की पहचान ऐसे अपराधों के रूप में की गई जिन्हें जमानतीय प्रवर्ग से परिवर्तित कर अजमानतीय प्रवर्ग में प्रवृत्त किया जाना चाहिए । भारतीय दंड संहिता की धारा 304क में यह सुझाव दिया गया कि कारपोरेट और चिकित्सा उपेक्षा से संबंधित मामलों में जमानत में अंतर किया जाना चाहिए । भारतीय दंड संहिता की धारा 312 में दंड के दो वर्गों के बीच भी, जिसमें दोनों जमानतीय बनाए गए हैं, अंतर किए जाने की आवश्यकता है । गर्भपात से संबंधित भारतीय दंड संहिता की धारा 313, 314 और 315 जैसे सभी संबद्ध अपराध अजमानतीय हैं । भारतीय दंड संहिता की धारा 312 और 316 की तरह अंतर किया जाना चाहिए ।

चर्चा के दौरान एक प्रश्नावली परिचालित की गई जिसके कुल 40 जवाब प्राप्त हुए । जवाबों में इंगित किया गया कि ऐसे प्रतिकर के उपबंध की आवश्यकता है जहां दो-नपूर्ण कारागार हुआ हो । विनिर्दि-ट प्रश्नों के कई जवाबों में भी 60/90 दिनों की अन्वे-ण अवधि के औचित्य, इस अवधि के परे अभिरक्षा मंजूर करने की प्रस्तावित शक्ति और जमानत रद्द करने की शक्ति, आदि से संबंधित वि-नयों को भी स्प-ट किया गया ।

2. पुलिस अधिकारियों से परामर्श

विधि आयोग को पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो के नई दिल्ली मुख्यालय में 2 नवंबर, 2016 को हुई **बैठक** में अनुभवी पुलिस अधिकारियों से परामर्श करने का अवसर मिला । जमानत संबंधी वि-नयों में पुलिस द्वारा झेली गई समस्याओं के बारे में आयोग को अभिकरणों और विभागों द्वारा विभिन्न टिप्पण भी भेजे गए थे । दिए गए सुझाव इस प्रकार है :–

(i) जमानत मंजूर करते समय अभियुक्त की रा-ट्रिकता का आज्ञापक सत्यापन किया जाना चाहिए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्यायालय अन्वे-क अभिकरण के माध्यम से उसके प्रत्यायकों को सुनिश्चित कर सके ।

(ii) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 जो मुल्तवी या स्थगन कार्यवाहियों की न्यायालय की शक्ति के बारे में है, यह सुझाव दिया गया कि इस आशय का एक परंतुक जोड़ा जाए कि विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 के अधीन जमानत आवेदनों की सुनवाई दैनिक आधार पर की जाए और न्यायालय द्वारा कोई स्थगन मंजूर न किया जाए । यह परंतुक उच्चतम न्यायालय के वर्तमान विनिर्णय के परे होगा कि कार्यवाहियां सामान्यतः दैनिक आधार पर की जाएं और स्थगन के लिए कारण लिखित में अभिलिखित किया जाए ।

(iii) गुवहाटी उच्च न्यायालय के विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह उल्लेख करते हुए यू. ए. पी. अधिनियम की धारा 43-घ(5) में एक स्प-टीकरण जोड़ा जाए कि कोई जमानत मंजूर न की जाए ।

(iv) स्वापक ओ-धि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 के अधीन एक नियम बनाया जाए कि वाणिज्यिक मात्रा वाले मामलों में कोई अशर्त जमानत न दी जाए ।

(v) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(1)(i) में यह उल्लेख है कि यदि यह विश्वास करने का उपयुक्त कारण प्रतीत होता है कि व्यक्ति मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दो-ी है तो ऐसे व्यक्ति को नहीं छोड़ा जाएगा । यह सुझाव दिया गया है कि सात व-र्ा से अधिक के कारावास से दंडनीय अपराधों के लिए इसे लागू बनाने के लिए नियम में संशोधन किया जाए ।

(vi) समानतः यह सुझाव दिया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 को यह सुनिश्चित करने के लिए संशोधित किया जाए कि तीन व-र्ा या अधिक के कारावास से

दंडनीय अपराधों के लिए जमानत आवेदनों का विरोध करने के लिए आज्ञापक रूप से अभियोजकों को सुना जाए ।

(vii) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 473(1)(i) को संशोधित करने के लिए पृथक सिफारिश की गई जिससे कि जमानत से इनकार न केवल दो-नसिद्ध व्यक्ति को बल्कि मृत्यु, आजीवन कारावास या सात व-र्ा या इससे अधिक के कारावास से दंडनीय अपराध में आरोपित व्यक्ति को भी किया जाए ।

(viii) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन पुलिस रिपोर्ट फाइल करने की आज्ञापक समय-सीमा को 60/90 दिनों से बढ़ाकर 120/180 दिनों तक किया जाए ।

अग्रेनित सुझाव यह है कि अभियोजन खंड में जिला स्तर समितियां ऐसी परिस्थितियों पर विचार करने के लिए गठित की जाएं जिसके अधीन जमानत मंजूर की गई है और कारण अभिलिखित किया जाए जिससे कि जमानत के मंजूर किए जाने में एकरूपता सुनिश्चित किया जाए । इन जिला समितियों के नि-क-र्ाों को नियमित रूप से प्रचारित किया जाए और इनकी सिफारिशों को क्रियान्वित किया जाए ।

3. पुलिस निदेशालय (अभियोजन) से सुझावों का संक्षिप्तांश

अधिकांश अभियोजन निदेशक यह विश्वास करते हैं कि उन लोगों को विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाए जो जमानत कार्यवाहियों के लिए अधिवक्ता नहीं लगा सकते और इसके बारे में जागरूकता पैदा की जाए ।

भिन्न-भिन्न अधिकारियों द्वारा दिए गए सुझावों का संक्षिप्तांश इस प्रकार है :-

1. असम राज्य

(क) लोक अभियोजक कार्यालय, डिब्रूगढ़ ने यह सुझाव दिया कि अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 440(i) का ज्ञान होना चाहिए और जमानत की रकम का नियतन मामले के परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् ही किया जाना चाहिए ।

(ख) लोक अभियोजक कार्यालय, कार्बी एंग्लो, दीफू ने सुझाव दिया कि पीठासीन अधिकारी द्वारा जमानत आवेदनों की सुनवाई यथासंभव शीघ्र की जाए और जहां अभियुक्त प्रतिभू या बंध-पत्र देने में असमर्थ है वहां निवास स्थल के बारे में सत्यापन के अधीन किया जाए ।

(ग) लोक अभियोजक कार्यालय, मोड़ी गांव ने यह सुझाव दिया कि जमानत आवेदन फाइल करने के लिए गरीब लोगों को अधिक सहायता उपलब्ध कराई जाए और इसके बारे में जागरूकता पैदा की जाए ।

(घ) लोक अभियोजक कार्यालय, नवगांव ने यह सुझाव दिया कि वर्तमान स्थिति में, लोक अभियोजक जमानत आवेदन की सुनवाई के पूर्व केस डायरी का परिशीलन करने का समय नहीं पाते अतः न्यायालय को जमानत आवेदन की सुनवाई के कम से कम दो दिन पूर्व केस डायरी मंगानी चाहिए । यह भी सुझाव दिया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437, 438, 439 के अधीन जमानत मामलों से निपटने के लिए पृथक न्यायालय गठित किया जाए ।

(ङ) लोक अभियोजक कार्यालय, तिनसुकिया ने यह सुझाव दिया कि अन्वे-नक अधिकारियों को संक्षेप में लोक अभियोजकों को उचित रूप से बात बतानी चाहिए ।

(च) लोक अभियोजक कार्यालय, सोनितपुर ने यह सुझाव दिया कि शोनित व्यक्तियों को विधिक सहायता दी जाए और जमानत के लिए आवेदन के अधिकार के बारे में जागरूकता पैदा की जाए ।

(छ) अपर लोक अभियोजक कार्यालय, उदलगोड़ी ने यह सुझाव दिया कि अन्वे-नक अधिकारी को केस डायरी समय पर भेज देना चाहिए और दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार उत्तरदायित्व रीति से साक्ष्य लेना चाहिए ।

(ज) अपर लोक अभियोजक कार्यालय, शिवसागर ने यह सुझाव दिया कि अन्वे-नक अधिकारी को जमानत की सुनवाई के लिए नियत तारीख के पूर्व केस डायरी के साथ अभियोजन रिपोर्ट की प्रति सौंपना चाहिए ।

(झ) लोक अभियोजक कार्यालय, मंगलदायी ने यह सुझाव दिया कि जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357क के अधीन कर्तव्यों की तरह कुछ सामाजिक लाभकर कर्तव्य करने चाहिए ।

2. **अभियोजन निदेशक जयपुर, राजस्थान** ने यह सुझाव दिया कि अन्वे-नक अधिकारी को जमानत आवेदन की सुनवाई के समय उपस्थित रहना चाहिए क्योंकि प्रायः केस डायरी में अन्वे-नण का अभिलेख अपूर्ण पाया जाता है ।

3. **अभियोजन और मुकदमेबाजी निदेशक और पंजाब सरकार के अपर सचिव** ने छल/दुरुपयोग से संबंधित अपराधों के बारे में विनिर्दि-ट सुझाव दिया और अग्रिम जमानत मंजूर करते समय, धन के स्रोत को प्रकट किया जाए ।

4. **लोक अभियोजन निदेशक, भुवनेश्वर, उड़ीसा** ने यह सुझाव दिया कि छोटे अपराधों के लिए, अभियुक्त को उचित पहचान-पत्र और पते के सबूत के साथ बंध-पत्र पर खोला जाए और जमानत के लिए अभियुक्त व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने हेतु स्थायी तंत्र बनाया जाए ।

5. **अभियोजन निदेशक, देहरादून, उत्तराखंड** ने यह सुझाव दिया कि अन्वे-नक अधिकारी अभियोजन को तत्काल सूचना दे जिससे कि जमानत आवेदन के सुनवाई के समय साक्ष्य की कोई हानि न हो ।

6. **अभियोजन निदेशक, शिमला, हिमाचल प्रदेश** ने इस आशय की प्रतिपादना की कि वित्तीय हानि का जोखिम अभियुक्त व्यक्ति को भागने से निवारित करने के लिए पर्याप्त नहीं है अतः जमानत मंजूर करने की संपूर्ण अवधारणा पर पुनः विचार किया जाए ।

7. **विधि विभाग, पुड्डुचेरी सरकार** ने यह सुझाव दिया कि जमानत मंजूर करने का विनिश्चय करते समय न्यायालय को अभियुक्त की पृ-ठभूमि और पीड़ित की स्थिति पर विचार करना चाहिए ।

8. **अभियोजन निदेशालय, दमन और द्वीव संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन** ने यह सुझाव दिया कि जब अपराध न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय हो तो जमानत की मंजूर को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

9. **अभियोजन निदेशक, चेन्नई, तमिलनाडु** ने यह सुझाव दिया कि जमानत आवेदन का निपटान करने और नोटिस जारी करने के लिए कानून समय-सीमा नियत की जाए ।

10. **अभियोजन निदेशालय, मुम्बई, महारा-ट्र राज्य** ने यह सुझाव दिया कि अग्रिम जमानत के लिए लोक अभियोजक को नोटिस दिया जाए यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 इसका उपबंध नहीं करती । यह सुझाव दिया कि प्रतिभू की जानकारी रजिस्टर करने के लिए विशे-न ऑनलाइन प्रणाली होनी चाहिए जैसाकि यह अनेक मामलों में प्रतिभू बनने से लोगों को निवारित करेगा ।

****